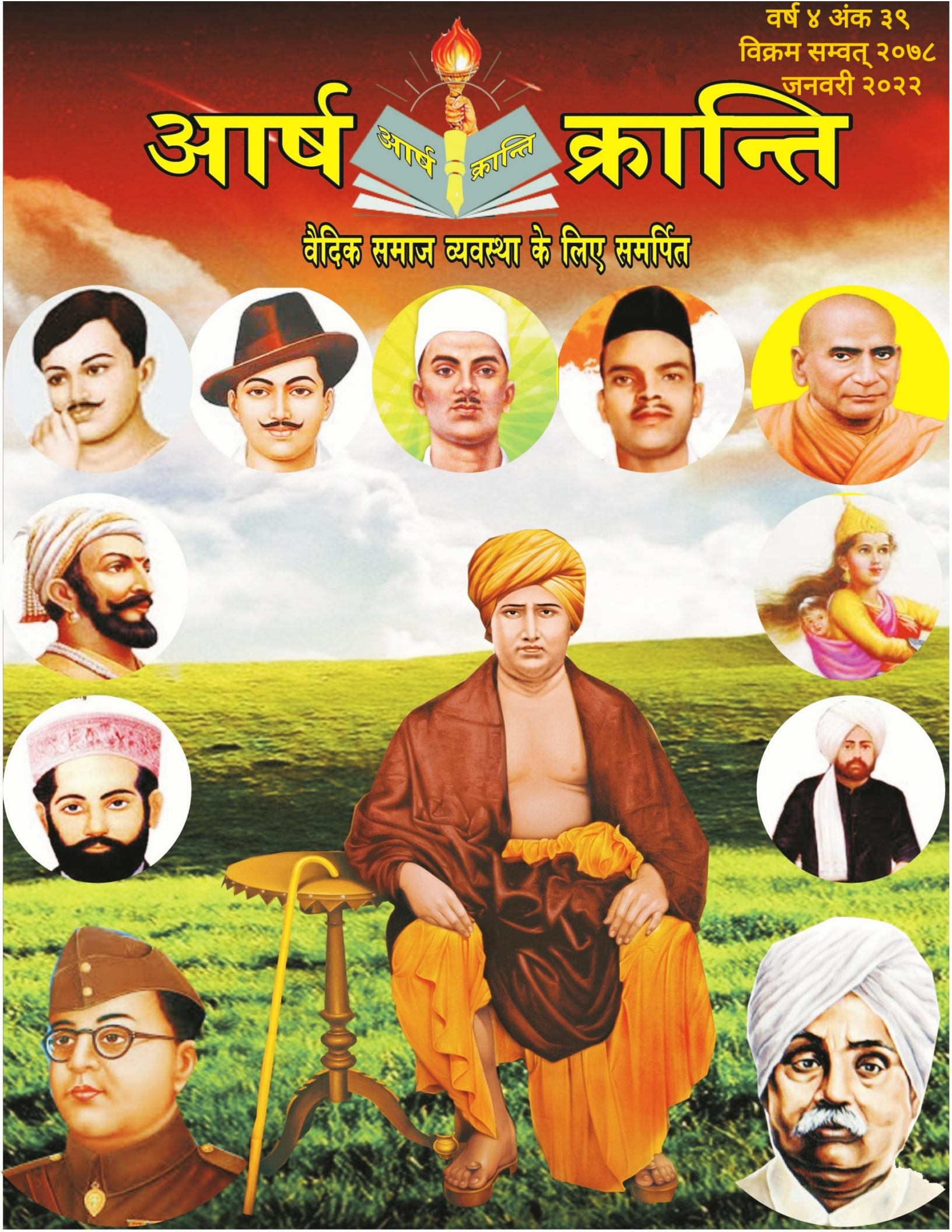
वर्ष ४ अंक ३९
विक्रम सम्वत् २०७८
जनवरी २०२२

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित



ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति



जनवरी २०२२

वर्ष–४ अंक–३६,
विक्रम संवत् २०७८
दयानान्दाब्द– १९७
कलि संवत् – ५१२३
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२२

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९६३०,
९९९३९७०९४०)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)
पिन कोड –३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. क्रान्ति धर्म (सम्पादकीय)
२. राष्ट्र–भाषा हिन्दी (कविता)
३. कोरोना के 'साइडइफेक्ट' की चुनौती
४. फिर देरी हो जायेगी (कविता)
५. Follow Satyarth Prakash (Intro -2)
६. वेद क्रान्ति
७. शारीरिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए...
८. नकली खुदा (कविता)
९. वैदिक परम्परा के अप्रतिम संन्यासी...
१०. मकर संक्रान्ति का काल और महत्व
११. क्रान्ति वहां निश्चय हो (कविता)
१२. मैं गुलामी के घी की अपेक्षा आजादी...
१३. सुरक्षा व संकल्पों से ही बचाया जा सकता...
१४. गणतंत्र, लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की आजादी
१५. ऐश्वर्य और सद्गुण से जीवन...

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

क्रान्ति धर्म

क्रान्ति करने का मतलब है आपत्तियाँ मोल लेना, जोखिम उठाना, विकृत परम्पराओं, रूढ़ियों, कुरीतियों, रिवाजों को अस्वीकार ही नहीं अपितु उनका उल्लङ्घन करना। एक क्रांतिकारी यही करता है। उसे जो ठीक नहीं लगता उसे वह स्वयं नहीं करता और जो वैसा करते हैं उन्हें भी नहीं करने देता। यही नहीं वह उसके विपरीत भी करता है और इस तरह उसे अन्यों का कोपभाजन भी बनना पड़ता है। सामाजिक बहिष्कार, प्रताड़ना और निन्दा का दंश झेलने के अतिरिक्त कभी–कभी जान भी गंवानी पड़ती है। उपेक्षा और उपहास का पात्र बनना पड़ता है। अपनी बात को युक्ति और तर्कसंगत सिद्ध करने का प्रयास करना होता है, आत्मरक्षा भी करनी होती है और अपना मार्ग स्वयं बनाना होता है। आवश्यक साधन स्वयं जुटाने पड़ते हैं। इसके लिए अत्यधिक बौद्धिक क्षमता, सूझ–बूझ, साहस, धैर्य, सहिष्णुता, निर्भीकता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, निर्णयदक्षता आदि गुणों की आवश्यकता होती है। जान को सदैव हथेली पर रखकर चलना होता है। इसी पर किसी क्रान्तिकारी की सफलता और असफलता निर्भर करती है।

कभी–कभी तो ऐसा भी होता है कि अपने ही सगे सम्बन्धी, माता–पिता, भाई बन्धु क्रान्तिकारी का विरोध करने लगते हैं। किसी कवि ने लिखा है–

अपने ही विमुख पराए बन आंखों के सम्मुख आएंगे,
पग–पग पर घोर निराशा के काले बादल छा जाएंगे।
तब अपने एकाकीपन पर पथ भूल न जाना पथिक कहीं।।

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि स्वयं माता पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया, उत्तराधिकार और दायभाग से वञ्चित कर दिया, सार्वजनिक घोषणा कर दी कि इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, यह हमारा कोई नहीं है इत्यादि।

इससे विदित होता है कि क्रान्ति करना या क्रान्तिकारी होना बहुत कठिन कार्य है फिर भी लोग क्रान्तिकारी बनते हैं, सब कुछ जानते हुए भी जोखिम उठाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य क्रान्तिकारी नहीं हो सकता। क्रान्ति करना सबके वश का नहीं, कोई विरला वीरपुरुष ही क्रान्ति के लिए सन्नद्ध होता है। क्रान्ति क्या है और क्यों करनी होती है–विचारकों का कहना है कि जब सहनक्षमता समाप्त हो जाती है तब क्रान्ति का उदय होता है। जब भी प्रगतिचक्र अवरुद्ध हो जाता है तो उसे घुमाने और आगे बढ़ाने के लिए आगे को खींचना पड़ता है या फिर पीछे से धक्का देना पड़ता है साथ ही अवरोधक कारण को भी हटाना पड़ता है। इस प्रकार बलपूर्वक प्रगतिचक्र को आगे बढ़ाना ही क्रान्ति है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह जब तक समाज के अनुशासन में रहता है तब तक मनुज कहलाता है, जैसे ही अनुशासन की अवहेलना करके मनमानी करने लगता है वैसे ही वह दनुज बन जाता है। क्रान्ति मनुज और दनुज के मध्य होने वाला सङ्ग्राम है। मनुज जीतता है तो समाज समुन्नत होता है। यदि दनुज जीतता है तो समाज पतन के गर्त में गिरकर नष्ट हो जाता है।

जब कभी भी कोई एक जन या एक वर्ग बल और छल से समाज का सुख भाग छीन लेता है और विरोध करने पर प्रताड़ना और यातना देने लगता है और ऐसी स्थिति बन जाती है कि –

सहते–सहते अनय कि जब मर रहा मनुज का मन हो।
समझ कापुरुष अपने को धिक्कार रहा जन–जन हो।।

तब क्रान्ति का जन्म होता है।

तब कोई नृसिंह प्रकट होता है और क्रान्ति के लिए सिंहनाद कर उठता है। कविवर दिनकर के शब्दों में –

सहज ही चाहता कोई नहीं लड़ना किसी से।
किसी को मारना अथवा स्वयं मरना किसी से।
नहीं दुश्शान्ति को भी तोड़ना नर चाहता है।
जहां तक हो सके निज शान्ति प्रेम निबाहता है।
मगर ये शान्तिप्रियता रोकती केवल मनुज को।
नहीं यह रोक पाती है दुराचारी दनुज को।
दनुज कब श्रेष्ठ मानव को कभी पहचानता है।
विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।
समय ज्यों बीतता त्यों–त्यों अवस्था घोर होती।
अनय की श्रृंखला बढ़कर कराल कठोर होती।
अचानक तब महा विस्फोट कोई फूटता है।
मनुज ले जान हाथों में दनुज पर टूटता है।।

इसे ही क्रान्ति कहते हैं। इस क्रान्ति को प्रारम्भ करने वाला वीर पुरुष ही क्रान्तिकारी कहलाता है।

क्रान्ति के मूल में जनहित, स्वतन्त्रता और स्वत्वरक्षा

निहित होती है, इसीलिए जनसमूह इसके साथ जुड़ जाता है। विना जन सहयोग के कोई भी क्रान्ति सफल नहीं हो सकती।

क्रान्ति और हिंसा –

स्वत्व और स्वतन्त्रता का हरण हमेशा बल और छल से ही होता है। छल से होने वाले हरण को तो वैचारिक ढंग से लड़ कर दूर किया जा सकता है, किन्तु बलपूर्वक होने वाले हरण को बलपूर्वक ही दूर किया जा सकता है। इस लिए आत्मरक्षा और शत्रु के षड्यंत्रों को विफल करने के लिए आवश्यक हिंसा करनी ही पड़ती है। रोग को नष्ट करने हेतु कड़वी दवा खानी ही पड़ती है और नासूर बन गए भाग को काटकर अलग करना अनिवार्य हो जाता है।

रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो,
तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या,?
शमित होगा वह नहीं मिष्ठान्न से।।

और

छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।।

अतः जरूरी हिंसा को मोहग्रस्त होकर त्याग देने से बहुत बड़ी हिंसा का दंश व्यक्ति और समाज दोनों को झेलना पड़ता है। जब स्वत्वहरण और शोषण को धर्म, ईश्वर और राष्ट्रवाद का चोला पहना दिया जाता है और इनकी आड़ लेकर क्रान्ति का विरोध किया जाता है और शान्ति की दुहाई देकर क्रान्तिकारियों को हिंसक बताकर बदनाम किया जाता है, तब स्थिति बहुत विकट बन जाती है। कुछ यूं होता है –

सुख समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल,बल,छल से।
किसी क्षुधित का ग्रास छीन
धन लूट किसी निर्बल से।
सब समेट प्रहरी बिठलाकर
कहते कुछ मत बोलो।
शान्ति सुधा बह रही न इसमें
गरल क्रान्ति का घोलो
हिलो डुलो मत, हृदय रक्त हमको अपना पीने दो।
अटल रहे साम्राज्य शान्ति का
जियो और जीने दो।।.....

इस लिए एक क्रान्तिकारी को किसी दुविधा या मोह में पड़कर आवश्यक हिंसा से विमुख नहीं होना चाहिए और अपने शरीर बल और शस्त्रबल की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि –

कौन केवल आत्मबल से जूझकर
जीत सकता देह का संग्राम है।
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं कभी
काम आता है बलिष्ठ शरीर ही।।

अतः वैचारिक और सशस्त्र क्रान्ति में समन्वय और सन्तुलन बनाए रखने की योग्यता प्रत्येक क्रान्तिकारी में अवश्य होनी चाहिए।

कोई क्रान्तिकारी इरादतन हिंसक और शोषक नहीं होता अन्यथा वह क्रान्तिकारी नहीं हो सकता। वह शोषकों और हिंसकों से समाज की रक्षा के लिए ही आवश्यक हिंसा करता है।

चारों वेदों में युद्ध के और हिंसा के अनेक सूक्त हैं और नीति शास्त्रों में भी ऐसा ही कहा गया है। इस प्रकार के युद्ध को अनिवार्य मानते हुए इसे धर्मयुद्ध नाम दिया गया है। देखिए ऋग्वेद का एक मन्त्र –

महौ महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान् संपिपेष मायाभिर्दस्यूंरभिभूत्योजाः।।

ऋ०,३,३,४,६.

इसका अर्थ है कि युद्धों में इस इन्द्र के अनेक पुण्य कर्मों का बखान करते हुए कहा गया है कि उसने छल कपट करने वालों को छल कपट से और हिंसकों को हिंसा से पीस डाला, इस प्रकार दस्युओं को पराजित कर दिया।

नीतिशास्त्र भी कहता है कि –

यस्मिन् यथा वर्त्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यं साध्वाचारःसाधुना प्रत्युपेयः।।

अपि च –

यथाऽवध्येवध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन। स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः।।

अर्थात् मनुष्य जैसा वर्ताव करे उसके साथ वैसा ही वर्ताव करना धर्म है। छल कपट वालों के साथ छल कपट से और सज्जनों के साथ सज्जनता से वर्तना चाहिए। जो पाप न मारने योग्य को मारने से होता है, वही मारने योग्य को न मारने से होता है ऐसा धर्मविद् मानते हैं।

महाकवि भारवि कहते हैं कि –

व्रजन्ति ते मूढ़धियःपराभवं,भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति
शठास्तथाविधान्नसंवृतांगान्निशिताइवेषवः।।

अर्थात् वे जड़बुद्धि पराभव को प्राप्त करते हैं जो मायावियों के लिए मायावी नहीं होते। ऐसे लोगों के बीच घुसकर क्रूर शत्रु उन्हें उसी प्रकार मार डालते हैं जैसे कवच रहित शरीर में घुस कर पैने बाण मार डालते हैं।

एक क्रान्तिकारी को यह सब विदित होना चाहिए अन्यथा वह सफल नहीं हो सकता। जिस समाज में ऐसे समझदार क्रान्तिवीर नहीं होते वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है या पराधीन हो जाता है। अतः

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः।।
वयम् जयेम त्वया युजा।।

इति।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

ओ३म्

जितना-जितना संसार के लोग ईश्वरीय संविधान का पालन करते है, उतनी-उतनी मात्रा में वे सब लोग सुखी हैं और जितनी मात्रा में वे ईश्वरीय संविधान का उल्लंघन चोरी, डकैती, झूठ, भ्रष्टाचार व व्यभिचार आदि दुखदायक कर्म करते है, उतनी मात्रा में वे सब दुःखी हैं।

राष्ट्र–भाषा हिन्दी

हमारे देश भारतवर्ष की हिंदी
विश्व भाषा में यह सिरमौर है
संपर्क भाषा है भारत की यह
यह बात करना अति गौर है।
ऐसी क्षमता कहाँ अन्यों में है
अंग्रेजियत दिखाने का दौर है।
अक्षर के नहीं होते इसके क्षर
स्वर, व्यंजन का अनूठा संगम
रम गया जो इसमें भली भांति
अंतः गुनगुनाएगा बन सरगम।
संस्कृत भाषा है जननी इसकी
लिपि को कहते हम देवनागरी
सप्तस्वरों के माधुर्य ने भर दी
छलछलाती हुई मधुर गागरी।
यह भाषा बहुत समृद्ध विश्व की
शब्द हैं इसमें अत्यंत ही भरमार
गाने तो बहुत सुन्दर रचे गए हैं
गुनगुनाता है आज सारा संसार।
राजनीति के दाँव पेंच में उलझ
यह अपने ही देश में कराह रही
"आर्य" जो राष्ट्र-भाषा को मानता
देश संगठित करने में हैं वे सही।

कोरोना के 'साइडइफेक्ट' की चुनौती

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

गैर सरकारी संस्था इंडिया चाइल्ड प्रोटेक्शन फंड (आईसीपीएफ) की अप्रैल 2020 की रिपोर्ट कहती है कि जब देश में कोरोना की वजह से पूर्णबंदी थी तब बाल पोर्नोग्राफी की मांग सबसे अधिक 95 फीसदी तक बढ़ी थी। इस दौरान बच्चों ने वह सब कुछ देखा–सुना जो उन्हें कच्ची उम्र होने की वजह से देखना–सुनना खतरनाक माना जाता है। इसका असर यह हुआ कि चाइल्ड पोर्नोग्राफी जैसी गम्भीर बीमारी तेजी के साथ बढ़ी। इसकी वजह से बच्चों में सेक्स अपराध की प्रवृति तेजी के साथ बढ़ी है।

कोरोना और उसके नये वैरियंट ओमीक्रान देश के कई हिस्सों में लगातार बढ़ता जा रहा है, उससे देश में दहशत का माहौल देखा जा रहा है। कोरोना के शुरूआती दिनों में जिस तरह प्रवासी मजदूर हड़बड़ाकर अपने घर लौटे थे कुछ उसी तरह दिल्ली, मम्बई जैसे बड़ों शहरों के रेलवे स्टेशनों पर दिखाई पड़ रहा है। गौरतलब है अफरा–तफरी में मजूदर अपनी पगार छोड़कर भाग रहे हैं। जाहिरतौर पर मेहनतकशों में यह दहशत फैल गई है कि यदि वे जल्द से अपने घर नहीं लौटे तो 'लाकडॉउन' में फंस सकते हैं। बढ़ती कोरोना की विकरालता की वजह से पिछले महीने इंग्लैण्ड, अमेरिका, इटली सहित दुनिया के तमाम देशों में लॉकडाउन लगा दिया गया। पहले जैसी या उससे भी ज्यादा पाबंदियां कई देशों में लगा दी गई हैं। विदेशों में रोज़ाना लाखों लोग कोविड19 और नये वैरियंट ओमीक्रान से ग्रस्त बताए जा रहे हैं। जहारों लोग काल के गाल में पहुंच रहे हैं। वैज्ञानिकों की माने तो इससे बच्चे, बूढ़े व जवान सभी संक्रमित हो रहे हैं। यह तब है जब भारत सहित विकसित देशों में लाखों–करोड़ों लोगों को टीके लग चुके हैं। सवाल यह है कि क्या टीके लगवा लिए लोगों के लिए कोविड का नया वैरियंट कोई खतरा पैदा नहीं कर पाएगा? क्या बिना किसी नई दवा के इससे पीड़ित मरीजों को बचाया जा सकेगा? क्या गारंटी है ओमीक्रान से ग्रसित व्यक्ति कोविड 19 वाले इलाज से ही ठीक हो जाएंगे? जैसा की देश के चिकित्सक कह रहे हैं।

जिस तेजी से कोविड और उसका नया वैरियंट ओमीक्रान को लेकर लोगों में बेखौफ या खौफ में रहने की हालात बन रही है, उससे कोरोना से लड़ने की ताकत या बचाव दोनों पर गौर करने की तुरन्त जरूरत है। लोगों को 'डर' की जगह साहस दिलाने की जरूरत है जिससे बच्चे, बूढ़े और महिलाएं बगैर किसी डर के बचाव के नियमों का पालन कर महामारी की इस नई किस्म का साहस के साथ मुकाबला कर सकें। गौरतलब है कोरोना की दूसरी लहर ने हर किसी को प्रभावित किया था, लेकिन बूढ़ों और बच्चों पर इसका असर कहीं ज्यादा हुआ। पिछले छः महीने में आम जिंदगी अपने ढर्रे पर लौट रही थी, लेकिन फिर ओमीक्रान के बढ़ते संक्रमण की वजह से दुनिया के कई देशों में दहशत का माहौल देखा जा रहा है। बच्चों और बूढ़ों की दिनचर्या सामान्य हालात में न आ पाने के कारण उन्हें शारीरिक और मानसिक समस्याएं ज्यादा परेशान कर रही हैं। बार–बार शिक्षण संस्थानों का बंद होना छोटे बच्चों के मासूम मन को परेशान कर रहा है। सर्वे की रपट भी यही कहती है। सर्वे के मुताबिक महामारी काल में दुनियाभर में 15 लाख से अधिक बच्चे अनाथ की जिंदगी जीने के लिए मजबूर हुए हैं। इनमें से एक लाख बीस हजार बच्चे भारतीय हैं। भारत की केंद्र और राज्य सरकारें अनाथ बच्चों के लिए कई तरह की मददगार योजनाएं शुरू की हैं, लेकिन ये बच्चे माता–पिता की छाया से महरूम होने के कारण अवसाद से निकल नहीं पाए हैं। आधुनिक समाज इंटरनेट और टीवी के बगैर अधूरा लगता है। पिछले 20 महीनों के दौरान शिक्षकों, अभिभावकों और बच्चों को ऑनलाइन सुरक्षा और भलाई के बारे में सिखाने के लिए तमाम प्रसास हुए। इन प्रयासों से बच्चों को फायदा तो हुआ लेकिन कई तरह की समस्याएं भी देखने को मिलीं। बच्चों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में बदलाव देखने को मिला। इंटरनेट के गैर–जिम्मेदार इस्तेमाल में वृद्धि महत्वपूर्ण कारक थी। इससे तरह–तरह के जोखिम

बढ़ें। ऑनलाइन अपराधी बच्चों का पीछा करते हैं। अनेक बच्चों को सोशल मीडिया के माध्यम से अपराधी और आतंकवादी बनाया गया। यौन हिंसा और दूसरी तरह की समस्याएं इंटरनेट की दुनिया में सैर करने वाले बच्चों में देखी जा रही हैं।

महामारी के इस दौर में दहशत का जो माहौल देखने को मिला वह दुनिया उससे कई तरह की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक और व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। स्कूल छूटने के कारण बच्चों को जिस मानसिक प्रताड़ना से गुजरना पड़ा और अब भी पड़ रहा है ,उससे बच्चों में हीनता और दीनता जैसी हालात लगा चिंता की बात बनती जा रही है। यूनीफाइड डिस्ट्रिक्ट इन्फॉरमेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन की रिपोर्ट बताती है कि कोरोना काल से पहले दुनिया में 25.8 करोड़ बच्चे और भारत में 6.52 करोड़ बच्चे स्कूल से बाहर और शिक्षा से वंचित थे।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन और यूनीसेफ की हालिया जारी रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया में बाल मजदूरों की तादाद 15.2 से बढ़कर 16 करोड़ हो गई है। गौरतलब है बाल मजदूरी की समस्या सबसे ज्यादा भारत और उन गरीब देशों में ज्यादा बढ़ी है जहां कोरोना की वजह से लाखों लोग प्रभावित हुए हैं।

पहली बार केंद्र सरकार ने सारे देश में जब बंदी लागू किया उससे प्रवासी मजदूरों को तीन तरह से समस्याओं का सामना करना पड़ा। जहां वे गांव आकर बेरोजगारी की वजह से भूखों मरने के कगार पर आ गए वहीं पर वे कोरोना के डर से रोजगार नहीं ढूढ पाए। परिवार में कोई अन्य आय का साधन न होने की वजह से ऐसे परिवार के बच्चों में एक मनोवैज्ञानिक दबाव बना जिससे बच्चे शारीरिक और मानसिक समस्याओं के शिकार हुए। पिछले दो साल में शहर से पलायन कर गांव लौटे प्रवासी मजदूर के बच्चों को न तो गांव के स्कूलों में दाखिला मिल पाया है और न ही जिन शहरों से वे लौटे थे वहां उनके माता–पिता लौट सकें हैं, इस वजह से गरीबी के आलम में भुखमरी के शिकार ऐसे परिवार के बच्चे तमाम तरह की समस्याओं से ग्रस्त हो असमय बचपन से दूर होते जा रहे हैं।

राष्ट्रीय आपराधिक रिकार्ड ब्यूरो यानी एनसीआरबी की हालिया रिपोर्ट से पता लगता है। रिपोर्ट के अनुसार महामारी ने बच्चों पर सबसे ज्यादा मानसिक आघात पहुंचाया है। घरों में कैद बच्चों ने किसी जेल में बंद कैदी की तरह स्वयं को महसूस किया। जिस आजादी में उनकी रोजमर्रा की जिंदगी उछल–कूद रही थी, वह अचानक जेल में बंद कैदी की तरह कैद हो गई। सर्वेक्षण के अनुसार महामारी काल में बच्चे सबसे ज्यादा घरेलू हिंसा के शिकार हुए या घरेलू हिंसा को उन्होंने 'साक्षात' देखा, जो उनके स्कूल में रहते हुए हुआ करती थी।

आंगनबाड़ी केंद्र, सरकारी स्कूलों में माध्यान्ह भोजन के जरिए गरीब परिवार के बच्चों को मिलने वाला भोजन भी बंद हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि गांव के गरीब परिवार के बच्चों को वे सभी कार्य करने पड़े जो सामान्यतौर पर वे नहीं कर सकते हैं। वहीं पर, महामारी काल में गरीब परिवार के बच्चों की लाचारी का फायदा उठाकर उन्हें बहला–फुसलाकर भीख मांगने, होटलों पर बाल मजदूरी करने, भट्टों पर लगाने और खेतिहर मजदूर के रूप में काम दिलाने के नाम पर बड़े पैमाने पर बच्चों का यौन, शारीरिक व मानसिक शोषण की खबरें आईं। गौरतलब है बच्चों की खरीद–फरोख्त करने वाले दलाल हर साल गरीब परिवार के बच्चों का अपहरण या खरीद–फरोख्त के जरिए बाल वेश्यावृत्ति, बाल मजदूरी, बाल व अनमेल विवाह, घरेलू मजदूरी जैसे तमाम अमानवीय कार्यों के लिए इस्तेमाल करते हैं। महामारी काल में उनके ये काले धंधे काफी तेजी से बढ़े और हजारों बच्चे शोषण व हिंसा के शिकार हुए। गौरतलब है महामारी काल में बच्चों का शोषण जिस गति से बढ़ा उतना कभी नहीं बढ़ा था। लैंसेट की रिपोर्ट के अनुसार दिसम्बर 2020 में पांचवें राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5) द्वारा जारी 36 में से 22 राज्यों के आंकड़े देश की बाल कुपोषण चुनौती से निपटने के बारे में सवाल उठाते हैं। गौरतलब है महामारी काल में 22 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के बच्चों के कुपोषण दर में भारी वृद्धि हुई है।

जब तक केंद्र, राज्य सरकारें और स्वयंसेवी संगठन मुस्तैदी से महामारी काल में बच्चों पर आई आफत पर गौर नहीं करेंगे और उनके लिए अलग से कोई वित्तीय प्रावधान और कोई बाल शोषण व हिंसा के खिलाफ नीति नहीं बनाई जाती तब तक बच्चों को उनका मौलिक अधिकार व बचपन नहीं लौटाया जा सकता है। चिंता और चिंतन करने की बात यह है कि अवसादग्रस्त

बच्चों की हालात को बदलकर उन्हें कैसे सामान्य दशा में लाया जाए। ओमीक्रान के बढ़ते मामलों से एक नया डर समाज में पैदा होने लगा है। इस डर से बच्चों को बचाना एक नई चुनौती है। ******

महर्षि दयानन्द द्वारा यजुर्वेद हिन्दी भाष्य का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद

प्रथम बार महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद आचार्य सतीश आर्य के द्वारा किया जा रहा है। यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद लगभग पूरा हो गया है, अभी संशोधन का कार्य प्रगति पर है। आचार्य सतीश जी ऐसे वेदज्ञ और अनुवादक हैं जिन्होंने अपने बल पर वैदिक वांग्मय के उत्थान में अनेक कार्य किए हैं। ज्ञातव्य है विश्व में वेद का अंग्रेजी अनुवाद मैक्स मूलर आदि का पढ़ाया जाता है। आचार्य सतीश आर्य ने महर्षि दयानन्द द्वारा किए गए वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद किया है। ज्ञातव्य है अभी तक ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया था। अंग्रेजी अनुवाद के इस कार्य से विश्व में महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य को समझने का विद्त जनों को अवसर मिलेगा। जो भी विद्वान् आर्य जन महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना –पढ़ाना चाहते हैं वे आचार्य सतीश आर्य के अंग्रेजी अनुवाद का अवलोकल एक बार अवश्य करें। आचार्य सतीश जी वेबसाइट के माध्यम से अंग्रेजी संस्कृत और हिंदी भाषा में वैदिक वांग्मय को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आइए, हम सभी इनके कार्य का अवलोकन करें और इन्हें प्रोत्साहित करें।

फिर देरी हो जायेगी

जो कहना है अभी कहो, कुछ न बचाओ सभी कहो।
जहां जरूरत तभी कहो, जहां उचित हो जभी कहो।
युद्ध क्षेत्र में खड़े हुए हो रणभेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

जो करना है आज करो, अपने मन पर राज करो।
चाहे जग नाराज करो, अपनी चिड़िया बाज करो।
केवल कांटे बच जायेंगे झरबेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

सदा झूठ पर गाज धरो, सच के सिर पर ताज धरो।
नहीं कर्म में लाज धरो, हाथों में बस छाज धरो।
पलक झपकते सूर्य ढलेगा अन्धेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

यथायोग्य व्यवहार करो, लेखन को तलवार करो।
घर को मत बाजार करो, आर पार का वार करो।
साख,राख अविलंब बनेगी इक ढेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

झूठी ताकाझांकी है, सच की कीमत आंकी है।
क्या आती तैराकी है, नहीं समय कुछ बाकी है।
हँसती गाती साँसें करुणा कावेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

तिल तिल जल कर नहीं मरो, नहीं पुण्य की फसल चरो।
सारा पाप उतार धरो, सारा पाप उतार धरो।
टनों मनों की ज्ञान गठरिया पंसेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

कफन तलक जल जायेगा, समय सिपाही गायेगा।
सुख–दुख नाच नचायेगा, नया सवेरा आयेगा।
जो तेरी है आज वस्तु वह कल मेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

बचपन खाया खेला है, यौवन बड़ा झमेला है।
पचपन तन मन ठेला है, कुछ साँसों का मेला है।
सँभल सँभल पग रखो 'मनीषी' धत्तेरी हो जायेगी।
सही समय पर सही काम कर फिर देरी हो जायेगी।

–✍ प्रोफेसर डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी

FOLLOW SATYARTH-PRAKASH (INTRO-2)

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Rishi Dayanand, before making comments on the books, and taking to the educational, social, religious and other reforms, observed for long, and found that the books were not declaring the truth, the teachers were not teaching the truth, the samnyasins were not following the truth, the scholars were not advocating the truth, and even the parents were not preaching the truth. Then he wrote the Satyarth-Prakash.

He writes in the Satyarth-Prakash Introduction, "जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।"

During general discussions, we come across many wrong notions which the speakers do not accept as wrong, like (a) The world develops itself without being created by God; (b) God and soul are one and the same entity; (c) Idol worship is nothing other than the worship of God. Only the admirers of Satyarth-Prakash can explain these notions in the light of Science and Vedas.

The holders of notion (a) argue that the natural propensities draw elements together, and they combine to make the objects of the world, there being none else as the creator of the world. Rishi Dayanand replies to them that, ''Lifeless objects, drawn towards each other by their own nature, cannot be combined with that regularity which might effect the creation of the world, unless there be an intelligent God to bring about the production. If it were all by mere nature, how is it that a second sun, a second moon and a second earth etc. do not come into existence automatically?''

They again argue that our body is a result of the chemical combinations of the four elements—earth, water, fire and air; and their mixtures give rise to a conscious being, called the soul, like intoxication caused by eating some

substances. Rishi Dayanand replies to them that, ‘‘The elements earth etc. are insentient. They can never give rise to a sentient being. Just as in these days the boy is born out of the contact of father and mother, similarly in the beginning of the universe, the form of the bodies of man etc. could not have come into being without God the creator. The birth and death of a sentient being cannot be likened to intoxication. Intoxication effects a sentient being and not an insentient being.’’

The holders of notion (b) put forward the following quotations:-

1- प्रज्ञानं ब्रह्म। **(God is knowledge)**

2. अहं ब्रह्मास्मि। **(I am God)**
3. तत्त्वमसि। **(Thou art God)**
4. अयमात्मा ब्रह्म। **(This soul is God)**

Then they claim that God and soul are one. Rishi Dayanand replies them that, ‘‘The second sentence means that I subsist in God. Here is the figure metonymy, container for the thing contained. When we say that ‘platforms cry’ we mean that ‘watchmen seated on the platforms cry’, because the platforms, being inanimate, have no power to cry. The same holds good here. If anybody asks, why has the soul been called here as subsisting in God, when everything subsists in Him? We reply that though all things subsist in God, nothing is so akin to God as the soul. The soul realizes God and is in direct communion with Him in salvation.

Therefore, the soul and God are in relation of the supported and the supporter, and of companionship. God and soul are by no means identical. Sameness can be predicated of the soul and God in the sense of close friendship, as some man may say ‘He and I are the same, i.e., friends.’ When a man realizes God directly in the state of yoga, he can say through the exuberance of love that he and God are the same. Only that soul can claim closeness with God who moulds his attributes, activities and temperament according to those of God.’’

The holders of notion (c) submit that God resides in the devotional feelings of the devotees, and God’s images or idols when worshipped with these feelings, this amounts to the worship of God in the fullest meaning of the term. Rishi Dayanand replies to them that, ‘‘When God is formless and all pervasive, it is not possible to make an idol of Him.

If the mere sight of an idol is a reminder of God, is it not possible to think of God by seeing God-made objects as earth, water, fire, air,

vegetables, and various other things, which exhibit the wonderful creativeness of the Almighty? When the idol is not before you, it is very likely that in private you forget God and engage yourself in theft, adultery and other evil pursuits. The idolater thinks, "Here there is none to see me.'' And he falls victim to temptations. These are all the disadvantages of idol-worship.''

The above are some of the demerits of the stand of partial persons; but they regard them as merits. At the same time, the principle of Rebirth, the concept of Moksha or salvation, and the Vedas being the knowledge from God, are all true principles; but the bigots regard them as not true. This is not the case with Vedic scholars.

God is one, omnipresent, formless, all-knowledge, just, kind and all-bliss. The soul is animate but different from God; independent to act but dependent to get rewards. The system of Four Vedas is the knowledge from God. As we sow, so shall we reap. We should study the Vedas, always do good deeds, and should pray to God through the Vedic system.

The Vedic scholars should submit before the people, these and other true principles, so that they could do the right things, and refrain from the bad ones.

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

हो पूर्ण समर्पण हमारा

डॉ० सत्यकाम आर्य

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः।।

– ऋग्वेद– २.१.१

ऋषि – आङ्गिरसः, शौनहोत्रो, भार्गवो, गृत्समदः।
देवता – अग्निः। छन्द – पङ्क्तिः

अंग्रेजी अनुवाद – O self- effluent, the sovereign Lord of men, ever eager to flare up around, your glory is manifested in firmanent waters, around rocks, in forests and in plants of the earth.

अर्थ – 'अग्नि' ('गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति पूजनं नाम सत्कारः') स्वभाव सम्पन्न होने से 'हे अग्रणी प्रभुवर!' ब्रह्माण्ड में अधिष्ठित ज्योतिर्मय 'सूर्य' ('सुवति प्रेरयति कर्मसु चराचरं जगत् स सूर्यः') आदि पिण्ड आपकी अनुपम महिमा को प्रकट करते हैं। 'हे स्वप्रकाशस्वरूप ! आप' ''सूते श्रियमिति सूर्यः'' गुणयुक्त होने से 'सर्वतः दैदीप्यमान' हैं। 'हे भुवनेश'! आप ही इन सकल भुवनों में तरल, गैस एवं ठोस अवस्था में सर्वसुलभ 'प्राण रक्षक जलों' से स्पष्टतः 'प्रादुर्भूत' होते हैं अर्थात् ये 'शान्तिप्रद जल' ('जैः जातैः प्राणिभिः लायते आदीयते इति जलम्') आपकी सर्वहितार्थ परम आत्मीयता की 'फलश्रुति' हैं। भिन्न – भिन्न आन्तरिक एवं बाह्य दबाओं तथा प्रभावों के परिणामस्वरूप एक महीतल में निर्मित ये 'पाषाणरूप' विविध प्राकृतिक भूदृश्य 'आपका' ही 'गुणगान' कर रहे हैं। 'हे क्रियाशील मनुष्यों आदि के सर्वरक्षक परमेश्वर!' ऊँचे पर्वतों पर आच्छादित ये जीवन रक्षक हरी–भरी एवं सघन 'वनस्पतियाँ एवं परिपक्व ओषधियाँ' आपके 'सर्वज्ञानमयो हि सः' के इस अद्वितीय एवं अतुल्य गुण का 'सस्वर बखान' कर रहीं हैं। 'हे सर्वेश्वर !' आप ही 'सर्वत्र दीप्त' हैं।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।

– ऋग्वेद– २.१२.१

ऋषिः – गृत्समदः। देवता – इन्द्रः। छन्दः– त्रिष्टुप।

अंग्रेजी अनुवाद – O men, it is the resplendent self, the foremost , who, as soon as it is born excels other divine faculties with its power and under its submission, the dual complex of body and mind functions, owing to the supermacy of its strength.

अर्थ – जिनका जन्म कभी न हुआ, न है और न होगा ऐसे परमेश्वर नाम 'अज' ('न जायते इत्यजः') 'प्रभु'! जो सनातन प्रजाओं के हितार्थ सदा से प्रादुर्भूत हैं, वे चराऽचर जगत् में अतिशय विस्तारवाले होने से सर्वत्र व्याप्त हैं , सकल जगत् का ज्ञाता होने से वे ज्ञानवान् ('ज्ञानस्वरुपो भवति , जानाति वा चराऽचरं जगत् तत् ज्ञानं ब्रह्म') हैं। सदा प्रकाशमान् वे भुवनेश्वर 'देव'('दीव्यति प्रकाशते स देवः') लोक– लोकान्तरों में स्थित 'सब देवों' ('देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति वा') को उनमें निहित 'शक्तियों' यथा 'सूर्य–चन्द्र' देव को दिव्य 'प्रभा' से, 'अग्नि' देव को तीव्र 'तेज' से और 'जल' देव को 'व्यापन बल' से अलंकृत करते हैं। 'हे मनुष्यों!' जिस जगदीश्वर की 'अपरिमित शक्ति' से ब्रह्माण्डस्थ सकल लोक अपने – अपने निर्धारित पथ पर गतिमान् हैं , 'वह सर्वेश्वर' अपनी उस 'परमशक्ति' ('यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः') की महनीय महिमा से सब शत्रुओं का विनाश करने वाला है।

शारीरिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए उपयोगी चूड़ाकर्म संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

वैदिक संस्कारों की आदर्श स्थिति वह है जब उन्हें विधि–विधान से किया जाए और जीवन का वे आधार बनें। संस्कारों का आधान शिशु में तब ही प्रबलता को प्राप्त करता है जब उसे शुभ संकल्प और सुचिता के साथ किया जाए। सामान्यतः अब संस्कार मात्र औपचारिकता बनकर रह गए हैं। लेकिन वेद और ब्राह्मण ग्रंथ इसकी आज्ञा नहीं देते हैं। भौतिक युग में जीवन की सफलता उत्तम भौतिक संसाधनों और धन–सम्पत्ति को इक्ट्ठा कर सुखी बनने में है। सुख का कोई मानक नहीं है। किशोरावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक हर व्यक्ति (यदि सांसारिकता से वैराग्य नहीं हुआ है) डिग्रीधारी होकर धन–दौलत अर्जित करने में ही जीवन की सार्थकता समझता है। आश्चर्य में डालने वाली बात यह है कि जिस धन–दौलत के लिए मनुष्य सारा जीवन लगा देता है, उससे अर्जित परिणाम अर्थात् सुख से दूर होता जाता है। इसलिए संस्कार की आवश्यकता होती है। संस्कार यह बताते हैं कि किन गुणों का आधान करके जीवन को पूर्ण बनाया जाना चाहिए। चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार की महत्ता शारीरिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए है। महर्षि दयानंद ने मानव जीवन में किए जाने वाले सोलह संस्कारों के सम्बन्ध में सूत्रवत् उनकी आवश्यकता, महत्ता, उपयोगिता, गुणवत्ता और विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत अंक में चूड़ाकर्म संस्कार पर वेद विशेषज्ञ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी लिखित लेख आप सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। लेख कैसा लगा, यह आप पाठकों के पत्रों से ज्ञात हो सकेगा।

– सम्पादक

चूड़ाकर्म से तात्पर्य है केशच्छेदन। इसे मुण्डन, चौल, क्षौर व केशवपन संस्कार भी कहते हैं। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष से लेकर तृतीय वर्ष की आयु तक इस संस्कार को कराया जाता है। आज के जमाने में भी समाज में जो कुछ संस्कार जीवित हैं उनमें यह भी एक है। विवाह व नामकरण संस्कार की तरह इस मुण्डन संस्कार को भी सभी मत–सम्प्रदायों को मानने वाले लोग अपने–अपने रीति–रिवाजों के अनुार सम्पन्न करते हैं। हरिद्वार, प्रयागराज (त्रिवेणी संगम) व उज्जैन आदि तीर्थ स्थलों में हजारों व लाखों की संख्या में श्रद्धालु अपना व अपने बच्चों का मुण्डन कराने पहुंचते हैं।

मुण्डन संस्कार का आयुर्वेदीय महत्व है। नख और केश शरीर के मल हैं, इनको साफ करके अंगुलियों व शिर को स्वच्छ रखना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। गर्भ में उत्पन्न बालों को एक बार सिर से साफ करना अत्यन्त जरूरी है। इस से शिर में फोडा–फुंन्सी नहीं होते और नये व घने सुन्दर बाल उत्पन्न होते हैं। केश–कर्तन से बालक के दाँत निकलने में भी सुविधा रहती है। दूसरी ओर दाँत निकलने समय शिर भारी होने लगता है, सिर में दर्द होता है, गर्म रहता है, मसूढ़े सूज जाते हैं, लार बहने लगती है, बच्चे को दस्त लग जाते हैं, आँखें आ जाती हैं, बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है । दाँतों का भारी प्रभाव शिर पर पड़ता है, इसलिए शिर को हल्का व ठण्डा रखने के लिए शिर से बालों का बोझ उतार डालना ही मुण्डन संस्कार का उद्देश्य है। चरकसंहिता, सूत्र स्थान 5/93 के अनुसार केश, दाढ़ी–मूंछ, नख आदि को कटवाने तथा बालों को तरतीब में रखने से पुष्टि, वृष्यता = शक्ति, आयु, सफाई व सौन्दर्य प्राप्त होता है।

पौष्टिक वृष्यम् आयुष्यं शुचिरूपं विराजनम्।
केशश्म श्रुनखादीनां कर्त्तनं सम्प्रसाधनम् ।।

सुश्रुत के चिकित्सा स्थान (24/72) में भी उल्लेख है कि मुण्डन से व्यक्ति को हर्ष उत्पन्न होता है, वह हल्का अनुभव करता है व उस में उत्साह बढ़ता है। इस प्रकार वह सौभाग्यवान् बनता है –

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षं लाघवं सौभाग्यकरं उत्साहवर्धनम्।।

वेद में भी मुण्डन संस्कार के अनेक गुणों का वर्णन है। आयु की वृद्धि के लिए क्षौर कर्म का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है–

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।

चिकित्सतु प्रजापतिदीर्घायुत्वाय चक्षसे।।

मुण्डन–संस्कार को कराते वक्त जिन वैदिक मन्त्रों का विनियोग शास्त्रकारों ने किया है उन मन्त्रों में बड़ी सावधानी बरतने की चर्चा है। ओं स्वधिते मैंनं हिंसीः ऋचा में साक्षात् छुरे को ही सम्बोधित किया गया है–तू शिर को चोट न पहुँचाना। अपितु शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः। (आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/17/15) इसके शिर को स्वच्छ कर देना, इस की आयु को मत हर लेना। इस संस्कार में बोले जाने वाले लगभग 15 मन्त्रों में दीघायु की वृद्धि की बात कही होने से यह संकेत मिलता है कि यह संस्कार आयु विवर्धन के लिए है। न केवल शिशु के अपितु बड़े व्यक्ति के शिर की नर्म त्वचा पर तीक्ष्ण धार वाले छुरे की धार सावधानी पूर्वक चलाकर केशकर्तन करने से जो सुखानुभूति व शिशु को नींद आने लगती है उस को महसूस किया जा सकता है। क्योंकि यह कर्म प्रमाद पूर्वक करने के कारण प्राणघातक व कुशलता पूर्वक करने से वृद्धि व आयुवर्धक है इसलिए पूर्व के ऋषियों ने मुण्डन को संस्कार का रूप दिया है।

मुण्डन न केवल केश काटना प्रारम्भ करने का ही प्रतीक है अपितु मस्तिष्क स्थित सम्पूर्ण अविद्या के मुण्डन कर देने का भी प्रतीक है। इसलिए अथर्ववेद 6/68/3 में कहा गया है– विद्वान् सविता देव ने जिस छुरे से शान्तिप्रिय सोम वरुण राजा का मुण्डन किया उसी से विद्वान् ब्रह्मा इस शिशु का भी मुण्डन करे जिस से यह गोमान् अश्ववान् व प्रजावान् हो सके–

येनावपत् सविता क्षरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्।।

इति

******

नकली खुदा

कोई खुदा बनकर यहां आया
कोई खुदा का है पैगाम लाया
असली खुदा तो गायब रहता
नकली हर तरफ नजर आया।
कितने जल मर खतम हो गए
कितने ढाई गज में हुए दफन
कोई सूली पर चढ़ दिया प्राण
सब ही ढँक गए सफेद कफन।
ना कोई पैदा किया एक चींटी
न खुद को मरने से बचा सका
अहंकार का ओढ़ मैली चादर
नफरत फैला,अपने को ढका।
भगवान बनने का शौक चढ़ा
हो गए महान खेल ही खेल में
भोग बिलास को अपनाकर वे
देखते देखते चल गए जेल में।
झूठ बोल फैलाये अँधेरा यहां
अंधकार में ही जी रहे हैं लोग
आर्य "परम सत्ता परम रहेगा
सत्य को अपना, मत कर ढोंग।

–✍ अरुण कुमार आर्य
प्रधान, आर्य समाज मंदिर
पं० दीन दयाल उपाध्याय नगर।

वैदिक परम्परा के अप्रतिम संन्यासी, वैज्ञानिक व वेदज्ञ डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश

– ✍ अखिलेश कुमार

आर्य जगत् के महतोमहान् संन्यासियों, वेदज्ञों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों में डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश विलक्षण और दिव्य मेधा के ज्ञानपुंज के समान दिखाई देते हैं। उन्होंने विरासत में अपने अप्रतिम विचारक और लेखक पिता महामण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय से वेद, विज्ञान, दर्शन, सृजन और समाज सुधार की युगधारा को प्राप्त किया था। वे स्वयं को 'जन्मना आर्यसमाजी' कहा करते थे। विश्व में आर्यसमाज को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके प्रचार–प्रसारकों में ऐसे महतोमहान् ज्ञानी, संन्यासी और वैज्ञानिक रहे हैं जिन्होंने विश्व के सर्वोच्च मेधा का भी मार्गदर्शन किया। ऐसे मार्गदर्शकों में स्वामी सत्यप्रकाश का नाम प्रमुख है। स्वामीजी ऐसे दिव्य चेतना के महामानव थे जिन्होंने परमात्मा की वाणी वेद को जहाँ जीवन के आधार के रूप में अपनाया वहीं विज्ञान और दर्शन को अनुसंधान और नवसृजन के लिए। यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामीजी एक महान् देशभक्त स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे और विदेशी ब्रिटिश राजसत्ता की क्रूरताओं के विरोध में 'बागी' बनकर अपनी देशोपकारक व स्वाधीनता की गतिविधियों का संचालन किया करते थे। समय, शक्ति, विचार, मेधा और क्षमता का भरपूर उपयोग कर कोई साधारण कद–काठी का व्यक्ति भी हिमालय जेसी ऊंचाई कैसे प्राप्त कर सकता है, उसके ज्वलंन्त उदाहरण थे डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश। वे जब तक जीवित रहे अपना सम्पूर्ण अवदान वेद, विज्ञान, समाज सुधार, स्वदेशी के प्रचार, लेखक, सम्पादक और शिक्षाविद् के रूप में देते रहे। उनके तिरोधान 18 जनवरी पर उन्हें शत्–शत् बार नमन्। आशा है पाठकगण मनोयोग से लेख पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य देंगे।

– सम्पादक

डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश कहा करते थे–''जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य आदि नहीं पैदा होता किन्तु मैं कह सकता हूँ कि 'मैं जन्मना आर्यसमाजी हूँ।'' स्वामीजी ऐसे महामना विचारक के सुपुत्र थे जिनकी मेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा बुद्धियों का लोहा सारा विश्व मानता था। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय मानते थे कि मिलावट को ठीक तरह से समझना आवश्यक है। उनके अनुसार मिलावट दो प्रकार की होती है–एक गेहूँ में कंकड़ के समान या अन्न में विष के समान। कंकड़ का दोष कंकड़ी तक सीमित है। वह एक देशीय है। विष का दोष समस्त आटे में प्रविष्ट हो जाता है। खाने वाला उसे अलग नहीं कर सकता है। स्वामी सत्यप्रकाश पर पिता के इस तरह के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। उनका बचपन और छात्र जीवन वैदिक संस्कारों से प्रभावित रहा। आप के जीवन में कभी किसी तरह की झोल नहीं दिखाई देता।

स्वामीजी के रोम–रोम में देशाभिमान और स्वदेशी के प्रति लगाव और प्रखरता थी। उनके छात्र जीवन की एक घटना उनके देशाभिमान व स्वदशी के लिए समर्पण का ज्वलन्त उदाहरण है। घटना उस समय की है जब रसायन विज्ञान के शोधार्थी के रूप में उनका शोध पूरा हो गया था और डीएससी की उपाधि मिलनी शेष थी। इस सर्वोच्च उपाधि वितरण के लिए तत्कालीन ब्रिटिश शासन के गर्वनर को बुलाया गया था। सभी को यह निर्देश था कि अपनी सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करने के समय विदेशी परिधान पैंट, बुसर्ट, टाई में ही आएंगे, क्योंकि ब्रिटिश गर्वनर भारतीय परिधान को हेय दृष्टि से देखता था। ठीक समय पर सभी छात्र विदेशी परिधान में अपनी सर्वोच्च उपाधि (डीलिट्, डीएससी आदि) प्राप्त करने के लिए पहुँचे, लेकिन छात्र के रूप में सत्यप्रकाश अकेले छात्र थे जो भारतीय परिधान और साधारण चप्पल पहन कर आए। जब डीएससी की उपाधि के लिए स्वामीजी अर्थात् सत्यप्रकाश को बुलाया गया तो उन्हें देखकर गर्वनर क्रोधित हो वहाँ से यह कहते हुए चला गया

कि मैं भारतीय परिधान में आए किसी छात्र को अपने हाथ कोई उपाधि नहीं दे सकता। इसे तो कोई विश्वविद्यालय का चपरासी ही देगा। इतना सुनना था कि सत्यप्रकाश मंच पर आए और माइक के सामने बोले–''मैं चपरासी से अपनी उपाधि लेना प्रसन्न करूंगा, क्यों कि वह विदेशी तो नहीं है।'' और उन्होंने चपरासी के हाथों ही अपनी डीएससी की उपाधि ग्रहण की। यह होता है भारतीयता और स्वदेशी के प्रति सम्मान का आदर्श। स्पष्ट हैं स्वामीजी के अन्दर देशाभिमान, सांस्कृतिक चेतना, स्वधर्म के प्रति अप्रतिम निष्ठा, स्वदेशी, स्वभाषा और भारतीयता का सर्वोच्च आदर्श कूट–कूट कर भरे थे। कभी किसी को निज स्वार्थ के वशीभूत होकर दुख नहीं पहुँचाया। आर्यत्व और मानव मूल्यों के पालक और संवाहक यदि कोई बड़ा नाम हमारे सामने दृष्टिगोचर होता है तो स्वामीजी का नाम प्रमुखता से लिया जाएगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के प्रवक्ता फिर प्रोफेसर होने के बाद भी उनका सम्पूर्ण जीवन भारतीय जीवनशैली और आर्य विचारों का एक आदर्श उदाहरण था। एक सद्गृहस्थ का आदर्श डॉ. सत्यप्रकाश के विचारों, कार्यो और व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है। उसके बाद जब वे संन्यासी हुए तब वे एक आदर्श वैदिक संन्यासी के रूप में आर्यजगत् में विख्यात हुए। और वैज्ञानिक होकर भी कभी विदेशी विचार, जीवनशैली या संस्कृति को अपने पास फटकने नहीं दिया। डॉ.स्वामी सत्यप्रकाश वैदिक सनातन परम्परा के ऐसे संन्यासी व वैज्ञानिक थे जिन्होंने अपना सारा जीवन भारतीय ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और दर्शन को दुनिया भर में प्रचारित–प्रसारित करने में लगा दिया। स्वामीजी ने वेदों का अंग्रेजी में अनुवाद करके वेदों को अंग्रेजी दुनिया तक पहुंचाने का ऐतिहासिक कार्य किए। वे जहां वैदिक वांगमय के एक महान् अध्येता, अनुवादक और संपादक थे वहीं पर रसायन व भौतिक विज्ञान के महान् वैज्ञानिक, अनुसंधानक और लेखक थे। उन्होंने रसायन व भौतिक विज्ञान से सम्बंधित ऐसी तमाम किताबों की रचना की जिससे भारतीय रसायन व भौतिक शास्त्र की महान् उपलब्धियों की जानकारी होती है। 'महान् व्यक्ति के महान पुत्र' की कहावत स्वामी सत्यप्रकाश के जीवन में चरितार्थ हम देखते हैं। उनके पिता महान दार्शनिक पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय ने उन्हें (डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश) जहां विज्ञान के क्षेत्र में एक महान् चर्चित रसायन विज्ञान के प्रोफेसर बनने के लिए उच्च शिक्षा दिलाई वहीं पर गणित, दर्शन, भाषा, समाज विज्ञान, वैदिक वांग्मय का समग्र ज्ञान और एक बड़े लेखक व सम्पादक बनने के लिए सतत आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। स्वामी सत्यप्रकाश इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वर्षों रसायन विज्ञान के विभागाध्यक्ष रहे। अवकाश ग्रहण करने के बाद और रसायन विज्ञान के प्रोफेसर रहते हुए भी उन्होंने अनेक कालजयी पुस्तकें लिखीं। इसके अलावा 150 से अधिक शोध ग्रंथों और अनेक चर्चित लेखों के लिखते हुए विज्ञान पत्रिका का गुरुतर सम्पादक के रूप में कार्य किए। 21 देशों की उनकी सफल यात्राएं कई मायनों में उनयोगी रहीं। धोती–कुर्ता पहनकर उन्होंने दुनिया के तमाम देशों में भारतीय वैज्ञानिक और धर्म–संस्कृति संवाहक के रूप में हिस्सा लिया। इससे वे चर्चा में हमेशा बने रहते थे।

डॉ. सत्यप्रकाश ने यूं तो अनेक चर्चित ग्रंथों की रचना की, लेकिन वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा, भारतीय अंकगणित की उपलब्ध प्राचीनतम पाण्डुलिपि का गणितीय प्रक्रियाओं के साथ सम्पादन, मुद्रा शास्त्र पर लिखा गया चर्चित शोध ग्रंथ, रसायनिक शिल्प की एकक संक्रियताएं जो सीएसआईआर से प्रकाशित हुई के अलावा 'भारत की सम्पदा' जैसे कालजयी ग्रंथों का सम्पादन से भारत के गणितीय और वैज्ञानिक गूढ़ताओं की जानकारी स्वामीजी के जरिए पहली बार दुनिया को मिली।

स्वामीजी सच्चे मायने में एक महान् वैदिक परम्परा के संन्यासी थे। त्याग, तपस्या, सादगी, सहिष्णुता और पवित्रता उनके जीवन के आधार थे। संन्यास ग्रहण करने के बाद उन्होंने एक संन्यासी का गौरवपूर्ण जीवन बिताया। उन्होंने वेद, शुल्बसूत्र, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, अग्निहोत्र, अध्यात्म, धर्म, दर्शन, योग, आर्यसमाज, स्वामी दयानंद, नवजागरण सहित तमाम क्षेत्रों पर ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे। पहली बार वेदों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद (23 खंडों में) स्वामी जी ने किया, जिससे अंग्रेजी भाषा के वेद ज्ञान जिज्ञासुओं को अंग्रेजी में वेद पढ़ने का अवसर मिला। इसी क्रम में शतपथ ब्राह्मण पर सात

सौ पेज की भूमिका पहली बार किसी वेदज्ञ ने लिखी, जिससे ब्राह्मण ग्रंथों को समझने में लोगों को सहुलियत हुई।

स्वामी सत्यप्रकाश जहां एक लेखक, सम्पादक, वैज्ञानिक, भाषाविद् थे वहीं पर वे एक विचारक व चिन्तक भी थे। एक वैज्ञानिक व धर्म–दर्शन वक्ता के रूप में उन्होंने 21 बार विदेश की याात्राएं कीं और वेद व वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार किया। वे उदारवादी चिंतक और विचारक थे। किसी विषय या बात पर वे रूढ़िवादी नहीं थे। उन्होंने वेद को विज्ञान के तराजू पर तौलकर दुनिया के सामने रखा। जिससे वेद के वैज्ञानिक पक्ष को लोगों को समझने में सहुलियत हुई। उन्होंने वेद और वैदिक वांग्मय को विज्ञान, तर्क और प्रमाण के साथ समीक्षा की। यही वजह है कि उनके वैदिक ग्रंथों व लेखों में एक वैज्ञानिक नज़रिया, तथ्य, तर्क और वैचारिक उदारता दिखाई देती है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामी सत्यप्रकाश एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी थे। वे 1942 में देश की आजादी के लिए जेल गए और स्वदेशी नमक आन्दोलन के समय जब अंग्रेजों ने भारतीय नमक खाने के काबिल नहीं है प्रचारित किया तो उन्होंने जवाहरलाल नेहरू के कहने पर लीडर अखबार में भारतीय नमक के पक्ष में चार शोधपूर्ण लेख लिखे। इससे ब्रिटिश सरकार के झूठ को बेनकाब करने में मदद मिली। गौरतलब है स्वामीजी की यह कोशिश होती थी कि विदेशी शासन के भारतीय समाज, स्वदेशी, धर्म और भाषा विरोधी शरारतों को बेनकाब किया जाए। उन्होंने साहस के साथ स्वदेशी और स्वसंस्कृति के गौरव और आदर्श को विदेशों में फैलाने के लिए वेद विज्ञान और भारतीय वैदिक दर्शन को आधार बनाया। उनकी लिखी धर्म, दर्शन, वेद, विज्ञान, हिन्दी भाषा और रसासन व भौतिक विज्ञान से ताल्लुक रखने वाले लेख और किताबों से भारतीय वैज्ञानिक गूढ़ताओं को सरल और सहज ढंग से लोगों को समझने में सुविधा हुई।

स्वामी सत्यप्रकाश का जीवन सहज और सरल था। उनकी वाणी, कार्य और व्यवहार लोगों को आकर्षित करते थे। एक संन्यासी का जीवन कैसा होना चाहिए, उनके स्वभाव, कर्म और व्यवहार से साफ दिखाई पड़ता था। वे अपने आप में आदर्श थे। पिता के वैचारिक ऊंचाइयों को उन्होंने हिमालय जैसी ऊचाई देने का भगीरथ प्रयास किया। दुनिया के अनेक वैज्ञानिक अधिवेशनों में उन्होंने भारतीय ज्ञान–विज्ञान को समग्र रूप से रखकर यह साबित किया कि भारतीय धरती उन वैज्ञानिकों (ऋषि–मुनियों) की है जिसने शून्य के सबसे अंतिम गिनती को निकाल कर दिया। इसी तरह भौतिक और रसायन विज्ञान की गूढ़ताओं और रहस्यों को उन्होंने अपने शोध ग्रंथों और लेखों के जरिए दुनियाँ की सबसे उच्च मेधा के सामने रखकर यह स्वीकार करवाने में सफल रहे कि भारत का वैदिक विज्ञान दुनियाँ का सबसे उच्च और पुराना विज्ञान है जो वेदों के मंत्रों में छिपा हुआ है। वेद में विज्ञान का जो स्वरूप स्वामी जी ने दुनियाँ के वैज्ञानिकों के सामने रखा उसकी चर्चा दुनियाँ के वैज्ञानिक जगत् में पहली बार हुई। इसी तरह वेदों के सम्बंध में विदेशियों में जो नकारात्मक विचार थे उन्हें भी स्वामीजी ने अनेक सर्व धर्म अधिवेशनों में दूर करने के ऐतिहासिक कार्य किए। इस तरह स्वामी सत्यप्रकाश का सारा जीवन भारतीय ज्ञान–विज्ञान, स्वधर्म उन्नयन, हिन्दी के प्रचार–प्रसार, स्वदेशी के प्रचार और मानव मूल्यों को दुनिया में प्रचारित करने में लगा दिया। इस तरह वेद, वैदिक धर्म–संस्कृति, मानवता, मूल्य, विज्ञान, धर्म, अध्यात्म और भारतीयता को देश–विदेश में प्रचारित–प्रसारित करते हुए यह महान् वैज्ञानिक संन्यासी 18 जनवरी 1995 में अपने स्व में विलीन हो गया। ******

जड़ – जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है; उसको "जड़" कहते हैं ।

चेतन – जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है; उसको "चेतन" कहते हैं ।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

मकर संक्रान्ति का काल और महत्व

— ✍ आचार्य नारायण शास्त्री

काल गणना और वैदिक मान्यता के अनुसार पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर एक सम्पूर्ण परिक्रमा को एक वर्ष कहा जाता है, इस एक वर्ष को दो भागों में बाँटा गया है – उत्तरायण और दक्षिणायण। जो छः छः माह का होता है। २२ जून से २१ दिसम्बर तक दक्षिणायण और २२ दिसम्बर से २१ जून तक उत्तरायण। इसमें उत्तरायण में दिन बडा और रात छोटी होती है दक्षिणायन में रात बड़ी और दिन छोटा होता है। अब २२ दिसम्बर से उत्तरायण लग चुका है अब धीरे–धीरे दिन बड़ा होगा और रातें छोटी होंगी। अभी हवन में संकल्प कराते समय विद्वान् लोग भी उत्तरायण कहते हैं।

जितने काल में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा पूरी करती है उसको एक ''सौर वर्ष'' कहते हैं और कुछ लम्बी वर्तुल आकार जिस परिधि पर पृथ्वी परिभ्रमण करती है। उसको ''क्रांति वृत्त'' कहते हैं। ज्योतिष के अनुसार क्रांति वृत्त के १२ भाग माने गए हैं। उन १२ भागों के नाम उन उन स्थानों पर आकाशस्थ नक्षत्रों के प्रकाश से मिलकर बनी हुई कुछ मिलती–जुलती आकृति वाले पदार्थों के नाम पर रख लिए गए हैं।

जैसे – १) मेष २) वृष ३) मिथुन ४) कर्क ५) सिंह ६) कन्या ७) तुला ८) वृश्चिक ९) धनु १०) मकर ११) कुंभ और १२) मीन

प्रत्येक भाग वा आकृति को राशि कहते हैं। जब पृथ्वी एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करती है तो उसको ''संक्रांति'' कहते हैं। लोकाचार से पृथ्वी के संक्रमण को सूर्य का संक्रमण समझा जाता है। ६ मास तक सूर्य क्रांति वृत्त से उत्तर की ओर उदय होता है और ६ मास तक दक्षिण की ओर निकलता है। प्रत्येक ६ माह की अवधि का नाम ''अयन'' है। सूर्य के उत्तर की ओर उदय होने को उत्तरायण और दक्षिण की ओर उदय होने को दक्षिणायन कहते हैं। दक्षिणायन काल में सूर्योदय दक्षिण दिशा की ओर दृष्टिगोचर होता है और उत्तरायण में सूर्य उत्तर दिशा की ओर दृष्टिगोचर होता है। सूर्य की मकर राशि की संक्रांति से उत्तरायण और कर्क राशि की संक्रांति से दक्षिणायण प्रारम्भ होता है। मकर संक्रांति के दिन सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करने की दिशा बदलते हुए थोड़ा उत्तर की ओर ढलता जाता है, इसलिए इस काल को ''उत्तरायण'' कहते हैं।

अब यह सामान्य प्रश्न उपस्थित होता है कि जब ''दक्षिणायन'' लगता है तब उत्तरायण की तरह उसे क्यों नहीं मनाया जाता?

इसको इस प्रकार से समझा जा सकता है जैसे रात की अपेक्षा दिन कार्य करने के लिए उत्तम है वैसे ही शास्त्र कारों और उपनिषद कारों ने भी दक्षिणायन की अपेक्षा उत्तरायण को विभिन्न प्रकार के संस्कारों को सम्पन्न कराने के लिए प्राण छोड़ने के लिए उपयुक्त माना है। वैदिक ग्रंथों में उसको ''देवयान'' कहा गया है और ज्ञानी पुरुष अपने शरीर त्याग तक की अभिलाषा इसी ''उत्तरायण'' में रखते हैं। उनके विचार अनुसार इस समय देह त्यागने से उनकी आत्मा सूर्यलोक में होकर प्रकाश मार्ग से प्रयाण करेगी। भारतीय इतिहास के अनुसार भीष्म पितामह ने इसी उत्तरायण के आगमन तक शरशय्या पर शयन करते हुए प्राण उत्क्रमण की प्रतीक्षा की थी। फिर पितामह ने सूर्य के उत्तरायण होने पर ही स्वेच्छा से शरीर का परित्याग किया था, कारण कि उत्तरायण में देह छोड़ने वाली आत्माएँ या तो देवलोक में चली जाती हैं अर्थात् पुनर्जन्म के चक्र से उन्हें छुटकारा मिल जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि २२ दिसम्बर से लेकर २१ जून तक कोई भी मरेगा तो वह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। इसका मतलब यह है कि जो जितेन्द्रिय समाधिस्थ योगी पुरुष, ईश्वर की अनुभूति करने के बाद जबा वह मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है तब वह नश्वर शरीर का त्याग करने के लिये वह उत्तरायण काल को चयन करता है।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उत्तरायण का महत्व बताते हुए गीता में कहा है कि उत्तरायण के छह मास

के शुभ काल में, जब सूर्य देव उत्तरायण होते हैं और पृथ्वी प्रकाशमय रहती है तो इस प्रकाश में शरीर का परित्याग करने से व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसे लोग ब्रह्म को प्राप्त हैं। इसके विपरीत सूर्य के दक्षिणायण होने पर पृथ्वी अंधकारमय होती है और इस अंधकार में शरीर त्याग करने पर पुनः जन्म लेना पड़ता है। यह पर्व चिरकाल से चला आ रहा है। उत्तरायण, दक्षिणायन की अपेक्षा अधिक प्रकाशमान होता है। अंधेरा कितना भी उपयोगी हो परन्तु प्रकाश सर्वश्रेष्ठ होता है। सज्जन, देवता लोग प्रकाश को पसंद करते हैं। हिंसक पशु, हिंसक मनुष्य लोग तमस, अज्ञान, अंधकार रात्रि को प्रिय करते हैं।

सूर्य पर आधारित वैदिक धर्म में मकर संक्रांति का बहुत महत्व माना गया है। वैदिक काल गणना के अनुसार यह मकर संक्रांति खगोलीय घटना है, जिससे जड़ और चेतन की दशा और दिशा तय होती है। सूर्य के प्रकाशाधिक्य के कारण उत्तरायण विशेष महत्व शाली माना जाता है और उत्तरायण के आरंभ दिवस मकर की संक्रांति को अधिक महत्व दिया जाता है। यह ऐसा पर्व है जिसे समूचे भारत में मनाया जाता है, चाहे इसका नाम प्रत्येक प्रांत में अलग–अलग हो और इसे मनाने के तरीके भी भिन्न हों, किन्तु यह बहुत ही महत्व का पर्व है। जब तक सूर्य पूर्व से दक्षिण की ओर गमन करता है तब तक उसकी किरणों का असर खराब माना गया है, लेकिन जब वह पूर्व से उत्तर की ओर गमन करते लगता है तब उसकी किरणें सेहत और शान्ति को बढ़ाती हैं।

आयुर्वेद के अनुसार मकर संक्रांति पर्व का विशेष महत्व है क्योंकि इस समय शीत अपने यौवन पर होता है। अच्छी सर्दी पड़ रही होती है, वैदिक शास्त्र में इस शीत (सर्दी) का ठीक–ठीक उपयोग करने के लिए इस शीत को ऊर्जा में बदलने के लिए तिल, तिल का तेल गोंद के लड्डू, गाजर पाक, गाजर का हलवा, मूसली पाक, शतावरी, अश्वगंधा, जावित्री, जायफल, केशर आदि पौष्टिक पदार्थ उपयोगी माने गए हैं। जिसमें तिल की सबसे ज्यादा प्रधानता है। मकर संक्रांति के दिन भारत के सभी प्रांतों में तिल और गुड़ के लड्डू या तिल की विभिन्न मीठाईयाँ बनाकर दान किए जाते हैं। परस्पर इष्ट मित्रों में सगे संबंधियों में बांटे जाते हैं।

कैसे मनाए मकर संक्रांति –

मकर संक्रांति के दिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर प्रातः वंदना नित्य दिनचर्या, गृह के परिमार्जन, शोधन आदि के पश्चात् स्नान कर नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधान पूर्वक सपरिवार यज्ञ करें। हवन की सामग्री में तिल, गुड़ या खांड का परिमाण प्रचुर मात्रा में होना चाहिए और आहुतिओं की मात्रा व सामर्थ्य अनुसार बढ़ानी चाहिए। यज्ञ के उपरांत स्व सामर्थ्य अनुसार गरीबों में कंबल वितरण, वस्त्र वितरण, खिचड़ी बनाकर बांटना, तिल के पदार्थ बनाकर अपने सगे संबंधी और व्यापारिक भाइयों को परस्पर आदान–प्रदान करना चाहिए। जिससे सामाजिक स्तर पर भी हमारा संगठन मजबूत रहे। शोषित और वंचित वर्ग भी मुख्यधारा में आ सके। कोई भी व्यक्ति शिक्षा से और भोजन से वंचित ना हो। इस पृथ्वी, धरा धाम, वायु, जल पर मनुष्य मात्र का समान अधिकार है। इसी भावना का प्रचार करना चाहिए घर में स्नान प्राणायाम संध्या के बाद नित्य यज्ञ के मंत्रों की आहुति देने के बाद बृहद यज्ञ विधि के मंत्रों से आहुतियां दें। फिर मकर संक्रांति के मंत्रों से विशेष आहुतियां प्रदान करें। यज्ञ में आहुति देने के लिए केसर और तिल डालकर चावल और मूंग की मीठी खिचड़ी बनाएं। स्विष्टकृत् आहुति इसी खिचड़ी की देवें।

वैसे मकर संक्रांति का असली समय तो 22 दिसम्बर होता है किंतु भारतवर्ष में 14 जनवरी को मनाने की परिपाटी चली आ रही है। यदि आप 14 जनवरी को मना रहे हैं तो इस प्रकार परिपालन करें और अगले वर्षों में धीरे–धीरे इसे 22 दिसम्बर में मनाने की परिपाटी शुरू करनी है। इसका ध्यान रखें!

आप सभी को रूढी रूप से मनाए जाने वाली मकर संक्रांति की बहुत–बहुत शुभकामनाएं। आप सदैव व्यस्त रहें, स्वस्थ रहें, मस्त रहें।

******

क्रान्ति वहां निश्चय हो

–✍ वेद कुमार दीक्षित
(देवास)

जहां छद्म सज्जनता में,
चलता हो छल का खेल।
हीन-स्वार्थ से सिंचित फैले,
नित्य द्वेष की बेल।
कुटिल शांति के भीतर धधके,
चिर अशांति की आग।
कूट-कपट से छीना जाए
जब निर्बल का भाग।
जहां मांगने से भी न्याय के पाने में संशय हो।।
क्रान्ति वहाँ निश्चय हो।।

जहां मुनाफाखोरी तक में,
स्पर्धा हो भारी।
नकली माल बेच लेने में,
बुद्धि लगाते सारी।
वणिक और व्यापारी मिलकर,
खूब प्रजा को लूटें।
स्वास्थ्य बना खिलवाड़ यहां तो,
माल दनादन कूटें।
एक भ्रष्ट हो अस्त अगर,
तो दूजा जहां उदय हो।।
क्रान्ति वहाँ निश्चय हो।।

जहां धर्म उन्माद बने,
और प्राणों पर संकट हो।
परमपिता की उपासना में,
पंथों का झंझट हो।
अंध-आस्था की सरिता में,
कुरीतियां बहती हों।
जातिवाद के कारागृह में,
मानवता रहती हो।
यदि अछूतके छू लेने से,
ईश्वरत्व का क्षय हो।।
क्रान्ति वहाँ निश्चय हो।।

जहां मद्य-मांसादि द्रव्य से,
देवों का हो अर्चन।
गांजा, भांग, अफीम, धतूरा से ईश्वर-आराधन।
जहां कर्म से भक्ति बड़ी हो,
अरु उद्यम से भिक्षा।
कुसंगति से मोक्ष प्राप्त हो,
गुरुडम से हो शिक्षा।
नट-विद्या की चकाचौंध में,
जहां योग का लय हो।।
क्रान्ति वहाँ निश्चय हो।।

जहां नारियोंकी पूजा का,
आडम्बर घर-घर हो।
किन्तु आत्मसम्मान पुरुष का,
स्त्री से बढ़कर हो।
कन्याओं का जन्म सदा ही,
भाग्य-लेख कहलाए।
सच्चरित्रता का प्रमाण,
नारी से मांगा जाए।
अबलाओं के शील-हरण में,
जहां पुरुष की जय हो।।
क्रान्ति वहां निश्चय हो।।

मैं गुलामी के घी की अपेक्षा आजादी की घास खाना अच्छा समझता हूं

— ✍ डॉ. ए.के.आर्य

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने छात्र जीवन में एक दिन अपनी मां से पूछा,''क्या हमारे देश की स्थिति बद से बदतर होती जाएगी–क्या भारत माँ का कोई भी सपूत अपनी स्वार्थी भावना को त्यागकर इस भारत माँ को समर्पित नहीं होगा?''इस वाक्य के एक–एक शब्द यह बताते हैं कि सुभाषचन्द्र बोस छोटी उम्र में ही किस तरह तत्कालीन भारत की दुर्दशा से आहत थे। किस तरह उनके मन में छोटी उम्र में ही देश, समाज, सांस्कृतिक चेतना, स्वदेशी और स्वतंत्रता की उत्कट भावना हिलोरे मारने लगी थी। 5 अप्रैल 1921 में उन्होंने अपने भाई शरच्चन्द्र बोस के पत्र से भी उनकी देश सेवा और समाज सुधार की प्रबल भावना और इच्छा का पता चलता है। वे शरच्चन्द्र को अपने पत्र में लिखते हैं–''यदि सिविल सेवाओं के सदस्य अपनी राजनिष्ठा का त्याग कर दें तभी और केवल तभी यह नौकरशाही का तंत्र गिर जाएगा।'' गौरतलब है उन्होंने 1921 में सिविल सेवा के प्रति अपनी निष्ठा का त्याग करते हुए उन्होंने एक बड़े धर्मयुद्ध की शुरूआत की, जो कि भारतीयों की निष्ठा को सैन्य सेवाओं की तरफ मोड़ने और भारत की स्वतंत्रता के प्रति निष्ठावान् बनाने का प्रयास था। उन्होंने देखा की देश तभी स्वतंत्र हो सकता है जब ब्रिटिश सरकार के अत्याचार को उसी की भाषा में जवाब दिया जाएगा। तब उन्होंने नारा दिया था–'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा'। उनका यह नारा कोई साधरण नारा नहीं था बल्कि भारत की आजादी का युगधर्मी महानिनाद था। जिसने भारत की युवा शक्ति को सभी वादों से ऊपर उठकर एक साथ आने और आजादी के लिए महासंग्राम करने का संकल्प भरा।

दिसम्बर 1928 में कलकत्ता (अब कोलकाता) में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में महात्मा गांधी के सम्मुख अंग्रेजों द्वारा भारत को उपनिवेश का दर्जा देने का प्रस्ताव पास होने के बाद नेताजी ने इसे भारत की पूर्ण आजादी के माकूल न पाया और उसी वक्त गांधी के इस उपनिवेशवादी प्रस्ताव की खिलाफत कर दी। यहीं से कांग्रेस दो धड़ों–गरम और नरम दल में विभाजित हो गई। नेताजी पीछे मुड़कर देखने वाले योद्धा नहीं थे। उन्होंने अपने दूरदर्शी नेत्रों और चेतना से आने वाले समय और समाज की धड़कन को पहचान लिया था। यही कारण है कि गांधी के विरोध के बावजूद वे भारत के लिए पूर्ण स्वराज की मांग को कांग्रेस के द्वारा पारित कराने के कार्य में लगे रहे जिसमें उन्हें सफलता 26 जनवरी 1929 को लाहौर के उस अधिवेशन में मिली जिसकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू कर रहे थे। अब उनके लिए भारत की पूर्ण स्वतंत्रता दिलाना और देश की तत्कालीन विकट परिस्थितियों से भारतीयों को मुक्ति दिलाना प्रमुख कार्य बन गये थे। नेताजी ने बखूबी समझ लिया था, देश की पूर्ण स्वतंत्रता के साथ देशवासियों में सत्साहस, वीरता का उत्साह, धैर्य, विश्वास और आत्मबल पैदा करना जरूरी है, क्योंकि लोगों को बिना सद्गुणों के मिली आजादी भी अधूरी रहेगी।

हिंदू–मुसलमानों की एकता को बनाए रखना उस वक्त बहुत बड़ी चुनौती थी। बिना जातीय एकता के देश में एकता की बयार नहीं कायम रह सकती है। सांस्कृतिक आत्मीयता तभी कायम रहेगी जब सम्प्रदायिकता की अग्नि से जातीय समरसता टूटने का डर न हो। नेताजी ने जातीय एकता और धार्मिक एकता पर जोर देते हुए कहा, ''धर्मान्धता सांस्कृतिक आत्मीयता की राह में सबसे बड़ी रुकावट है और उस धर्मान्धता को दूर करने के लिए निरपेक्ष और वैज्ञानिक शिक्षा से उपयुक्त और कोई उपाय नहीं है।''

मातृभूमि और देश सेवा क्या होती है इसे यदि देखना है तो हमें नेता सुभाष के पवित्र, आदर्शपूर्ण और बलिदानी जीवन को देखना चाहिए। उनका आत्मबल इस कदर मजबूत था कि अंग्रेजों के बड़े से बड़े प्रलोभन उन्हें कभी बिचलित नहीं कर सके, बल्कि उनके प्रति अंग्रेजी शासन की क्रूरता जैसे–जैसे बढ़ती गई वैसे–वैसे उनका आत्मबल, सत्साहस, समर्पण और वीरता के भाव बढ़ते गये। उन्होंने कहा था, *''मैं गुलामी के घी की अपेक्षा आजादी की घास खाना अच्छा समझता हूं।''* और इन सर्वश्रेष्ठ विचारों को उन्होंने आजीवन (23 जनवरी 1897–18 अगस्त 1945) अपने रोम–रोम में बसाए रखा। मातृभूमि और मुल्क की आजादी के लिए हिंसा और अहिंसा दोनों ही तरीकों को अपनाने में उन्हें गुरेज नहीं था। जैसा को तैसा का बर्ताव करना मुल्क और मानवता की हिफाजत के लिए वे कहीं से गलत नहीं मानते थे। यही वजह है कि उन्होंने अंग्रेजों को परास्त कर मातृभूमि को आजाद कराने के लिए जहां लाठियां खाईं, प्रताड़नाएं सहीं, जेल गए वहीं विश्व इतिहास में दर्ज अपने ओजस्वी कार्यों के लिए जाने जानी वाली 'आजाद हिंद फौज' का

गठन किया। मुल्क को आजादी दिलाने के लिए जरूरत पड़ने पर विभिन्न तरह की वेश–भूषाएं धारण करने में भी उन्होंने कोई गुरेज नहीं किया। देश के विकास और प्रगति के लिए उन्होंने आदर्शों को अपनाना जिंदगी के लिए जरूरी माना। उन्होंने कहा,''आदर्श को प्रत्येक क्षण सामने न रखने से जीवन में प्रगति करना असम्भव है। जीवन की कोई भी अवस्था अशांति से रहित नहीं होती। इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता।''

नेता सुभाष 28 मार्च 1941 को बर्लिन (जर्मनी) पहुंचने के बाद भारत की आजादी को धार देने के मकसद से बर्लिन में 'स्वतंत्र भारत केंद्र' की स्थापना की। इस केंद्र की स्थापना में जहां जर्मनी की सरकार ने मदद की वहीं पर जर्मन की जनता ने खुले मन से अपना सहयोग दिया। इस केंद्र की स्थापना के बाद ऐसे तमाम कार्य किये गये जिससे आगे चलकर भारत की आजादी को नयी शक्ति मिली। अंग्रेज नेताजी के इस कदम से चौंक गये। यहां यह गौर करने वाली बात है कि अंग्रेजों ने नेताजी के किसी ऐसे कदम के बारे में शायद कभी सोचा भी नहीं होगा कि गुलाम भारत का कोई आजादी का दीवाना उन्हें चकमा देकर जर्मनी पहुंच जाएगा और वहां अंग्रेजों के खिलाफ लोगों को संगठित कर देश की आजादी के लिए आर पार की लड़ाई के लिए अपना जीवन दांव पर लगा देगा। बर्लिन में जिस 'स्वतंत्र भारत केंद्र' की स्थापना हुई थी उसके जरिए ऐसे तमाम विदेशी धरती पर पकड़े गये भारतीयों और युद्धबंदियों को एकत्रित करके एक ऐसा भारतीय सैनिक दल का गठन किया जिसका मकसद ही था, जल्द से जल्द भारत को आजादी दिलाना। इस दल के सैनिकों ने पहली बार सुभाष बाबू को 'नेताजी' के नाम से पुकारना शुरू किया, जो आगे चलकर इतिहास का कालजयी अध्याय के स्वर्णिम पृष्ठ के रूप में हमेशा के लिए अंकित हो गया।

गुलाम भारत आजाद भारत बनें इसके बीच में खोई हुई अस्मिता, सांस्कृतिक चेतना, आर्थिक सम्पन्नता, धार्मिक उदारता, वैज्ञानिक सोच और आत्मविश्वास की पूंजी पुनः हासिल करना बहुत बड़ी चुनौती थी। यह चुनौती (पूंजी) जितनी देश को आजाद कराने की थी उससे कहीं कम नहीं थी। नेताजी इस बात को जानते थे। इस लिए वह मुल्क की आजादी, मानसिक आजादी और आर्थिक आजादी साथ–साथ प्राप्त करने के रास्ते पर बढ़ते रहे। इस असंभव से दिखने वाले कार्य में उन्होंने एक साथ कई मोर्चों पर कार्य किये। 1939 में आजादी के आंदोलन को धार देने के मद्देनजर उन्होंने 'फॉरवर्ड ब्लाक' की स्थापना की। यह ऐसा संगठन था जिसे देश के हर तबके का समर्थन हासिल था। यही वजह है कि नेताजी को इसके बाद एक महान् नेता के रूप में पहचान ही नहीं बनी बल्कि गुलामी के खिलाफ चल रहे आंदोलनों के नेतृत्व व सूझबूझ का परिचय भी लोगों को मिला। अब भारत को आजादी दिलाने के लिए दुनिया के देशों का समर्थन जुटाने का फैसला किया। इसके लिए नेताजी ने अंग्रेजों से बचने के लिए कई तरह की तरकीबें निकाली। यही वजह है कि वे वक्त–दर–वक्त वेशभूषा, नाम, ठिकाना और पहचान को बदलते रहे। उनके देश की आजादी के इस अनुकरणीय कार्य में जहां देश–विदेश के तमाम नामचीन लोगों ने उनका साथ दिया वहीं पर अफगानिस्तान, बर्मा, जर्मनी, जापान, रूस और इटली के तमाम साहसी लोगों ने अपना हर तरह से समर्थन व्यक्त किया।

समाजसेवा के क्षेत्र में उनके कार्य कम अनुकरणीय नहीं हैं। मजदूर आंदोलनों की अगुवाई हो, कलकत्ता के महापौर के रूप में उनके उल्लेखनीय कार्य हों, देश को आर्थिक सम्पन्नता की ओर ले जाने वाले उनके महान् अर्थशास्त्रीय विचार हों, संपादक और लेखक के रूप में उनका देश–समाज को दिए अवदान हों, समाज के गिरे–कुचले तबकों को उठाने के उनके पैगाम हों या विलक्षण प्रतिभा के धनी के रूप में उनके अवदान हों, सभी क्षेत्रों में उनका कोई शानी नहीं था। उनके दिए नारे–चलो दिल्ली' 'भारत माता की जय, 'जयहिंद', इंकलाब जिंदाबाद' और 'तुम हमें खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा' आज भी हमारे चेतना में रसे–बसे हैं। नेताजी आजादी के लिए बलिदान को सबसे जरूरी मानते थे। क्योंकि इसमें वह देशभक्ति और समर्पण है जो देश के किसी भी बड़े से बड़े कार्य में नहीं हैं। उन्होंने अपने प्रेरक उद्बोधन में एक बार कहा था, ''हम अपने खून से अपनी स्वतंत्रता का मूल्य चुकाएंगे और ऐसा करके हम राष्ट्रीय एकता की नींव रखेंगे। अपनी आजादी को बनाए रखने में हम तभी समर्थ होंगे जबकि इसे अपने बलिदान और खून से प्राप्त करें।'' ऐसे युगान्तरकारी महान् देशभक्त, समाज सुधारक, लेखक, सम्पादक और राजनेता को आजादी के अमृत महोत्सव पर शत्–शत् बार वंदन–अभिनंदन। ***

सुरक्षा व संकल्पों से ही बचाया जा सकता है हिन्दी और देवनागरी को

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

महर्षि दयानंद ने आर्य भाषा हिंदी को महत्ता देते और उसके विस्तार की कामना करते हुए कहा था–''मैं उस दिन को देखना चाहता हूं जब आर्य भाषा (हिंदी) देश की सम्पर्क और राष्ट्र भाषा बनकर देश को एक सूत्र में पिरोए।' इसी संदर्भ में महात्मा गांधी का यह वाक्य कितना प्रासंगिक हो जाता है–'' मैं अंग्रेजी से नफरत नहीं करता, लेकिन हिंदी से अधिक प्रेम करता हूं। इस लिए मैं हिंदुस्तान के शिक्षितों से कहता हूं कि वे हिंदी को अपनी भाषा बना लें। हम हिंदी के जरिए ही प्रांतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इस लिए लिखने में देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए। लेकिन गांधीजी की इस बात से आज कौन सा राजनीतिक दल इत्तफाक़ रखता है? आज तो हालात वैसे भी नहीं हैं जैसे आजादी के पहले विदेशी शासन में थे। गौरतलब है, आजादी के पहले गैर हिंदी भाषा–भाषी समाज सुधारक, लेखक और आंदोलनकारी हिंदी को देश की गौरव की भाषा मानते रहे और हिंदी का हर स्तर पर उपयोग करने वाले को देशभक्त और 'स्व–भाषा–संस्कृति' भक्त माना जाता था। आजादी के इन 74 वर्षों में स्वतंत्र भारत की किसी सरकार ने हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने के किसी स्तर पर कोई पहल नहीं की। तर्क यह दिया गया कि हिंदी किसी पर थोपी नहीं जाएगी। यानी राष्ट्र भाषा के महत्त्व को नकारा गया और हिंदी को दोयम दर्जे की भाषा बनाकर रखा गया, उस विदेशी और गुलामी भाषा के एवज में जिसने भारत को गुलाम बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। संसद के अंदर और बाहर मुट्ठीभर राजनीतिक हिंदी विद्वेषियों के दबाव के आगे हिंदी बोलने वाले 80 करोड़ जनता की भावनाओं को बड़ी ही क्रूरता के साथ कुचल दिया गया। 74 सालों से यही होता आ रहा है। हिंदी को दासी बनाकर वहां भी रखा जा रहा है, जहां से यह पली बढ़ी और आगे बढ़ी।

कभी महात्मा गांधी ने कहा था–''मैं बच्चों के मानसिक विकास के लिए उन पर मां की भाषा को छोड़कर दूसरी कोई भाषा लादना मातृभमि के प्रति पाप समझता हूं। यह विश्वास है कि राष्ट्र के जो बालक अपनी मातृभाषा के बजाय दूसरी भाषा में शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे आत्महत्या करते हैं। इसलिए, मैं इस चीज को पहले दर्जे का राष्ट्रीय संकट मानता हूं। आजादी के 74 वर्षों में गांधी जी के विचारों के विपरीत केंद्र और राज्य सरकारों ने बच्चों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में न देकर विदेशी भाषा में देना ही अपना और देश का गौरव समझा। जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी न जानने वाले बच्चें बेरोजगारी के आलम में जीने के लिए अभिशप्त हैं और अंग्रेजी जानने वाले शहरी बच्चें रोजगार पाकर एक अच्छी जिंदगी जी रहे हैं लेकिन ऐसे शहरी बच्चों में भाषा–प्रेम और देश–प्रेम के लिए उनके मन में कोई स्थान नहीं होता है। आज हालत यह हो गई है कि गांवों के बच्चों को उनके अभिभावक शहरी बच्चों के बराबर लाने के मकसद या दूसरे कारणों से अपनी मातृभाषा के स्थान पर विदेशी भाषा अंग्रेजी में शिक्षा लेने के लिए मजबूर हो रहे हैं। और भारत की आंचलिक भाषाएं ही नहीं राजभाषा हिंदी हर तरह से उपेक्षा की शिकार बनी हुई है।

भारत में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं की निरीह स्थिति कभी भारतीय राजनीति में कोई मुद्दा नहीं रही। भाषा को कभी देश की पहचान और अस्मिता से जोड़कर देखा ही नहीं गया। आजादी के इन 74 सालों में कांग्रेस या गैर कांग्रेसी सरकारों ने भी कभी भाषा को देश की एकता, अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना से जोड़कर देखा ही नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि देश की कोई एक सर्वमान्य राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई, जिससे देश की पहचान बनती। अब जबकि पिछले सात सालों से भाजपा नेतृत्व वाली केंद्र में सरकार पूर्ण बहुमत के साथ सत्तासीन है और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के वादे के मुताबिक हिंदी को राजकाज और अन्य स्तरों पर बढ़ावा देने के लिए कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है, इससे हिंदी–प्रेमियों और देश–प्रेमियों की उनसे उम्मीदें काफी बढ़ गई हैं, जो स्वाभाविक भी है। अब देखना यह है कि केंद्र सरकार के मंत्रालयों और सोशल मीडिया में हिंदी को बढ़ावा देने की जो बात कही जा रही है, वह कौन–सी हिंदी है। गौरतलब है पिछली यूपीए सरकार ने जिस

तथाकथित हिंदी का अपने मंत्रालयों में इस्तेमाल किया, वह हिंदी के नाम पर 'हिंग्रेजी' ही थी। यह हिंग्रेजी हिंदी का सर्वनाश करने के तहत षडयंत्र का एक हिस्सा है जिसे देशी–विदेशी हिंदी विरोधी लोग एक योजना के तहत पिछले 40 वर्षों से बढ़ावा देते आ रहे हैं। नरेंद्र मोदी सरकार को पिछली यूपीए सरकार से सीख लेते हुए इस साजिश को नाकाम करने के लिए एक आदर्श हिंदी या सहज हिंदी के इस्तेमाल पर जोर देना चाहिए, तभी हिंदी बच पाएगी।

केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों में हिंदी कामकाज की प्रथम भाषा बने, सोशल मीडिया में अपना प्रमुख स्थान बनाए, नौकरशाहों की भी चहेती बने और मीडिया में सही ढंग से आगे बढ़े यह जरूरी है, लेकिन इससे भी अधिक जरूरी है कि वह सारे देश में शिक्षा, प्रतियोगिता और विचार का भी माध्यम बनें। लगभग डेढ़ अरब से अधिक लोगों की सम्पर्क की भाषा बनें। यह इस लिए कि यदि हिंदी को इस कार्य के लिए आगे नहीं बढ़ाया गया तो विदेशी और गुलामी की भाषा अंग्रेजी आने वर्षों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का बेदखल करके उनके नामोनिशान मिटा देगी, इसमें कोई किन्तु–परन्तु की गुंजाइश नहीं है। आज देश में हिंदी की स्थिति यह हो गई है कि नई पीढ़ी से हिंदी के भविष्य के बारे में या हिंदी के विषय में कोई बात की जाए तो वह बंगले झांकने लगता है या कोई बहाना बनाकर टालना चाहता है।

हिन्दी से ज्यादा बदत्तर हालात देवनागरी लिपि की है। देवनागरी के अंक और अक्षर आज की नई पीढ़ी लगभग भूल गई है। केंद्र सरकार इस ओर नई पहल करते हुए देवनागरी लिपि को अनिवार्य करके इसको लुप्त होने से बचा सकती है। बिडम्बना कहें या हिंदी की त्रासदी आज हिंदी देवनागरी की जगह यूरोपियन लिपि में अधिक लिखी जाने लगी है। इस लिए हिंदी को बढ़ावा देने के साथ ही साथ देवनागरी के प्रयोग पर भी ध्यान देना होगा। कितने लोगों को मालुम है कि लिपि के बदलते ही भाषा की सांस्कृतिक, आत्मिक और स्वदेशीय प्रवृति भी विकृति होने लगती है। एक ठोस कदम उठाकर, तमाम विरोधों को दरकिनार करते हुए केंद्र की मोदी सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करके हिंदी और देवनागरी दोनों को बचाने के लिए ठोस पहल करनी होगी। यह देश के लिए ही नहीं संस्कृति, भारतीयता और देश की एकता के लिए भी जरूरी है।

पिछले 74 वर्षों में एक देश में दो देश हुए–भारत और इंडिया। भारत वालों की भाषा हिंदी और भारतीय भाषाएँ हैं और इंडिया वालों की भाषा अंग्रेजी और हिंग्रेजी है। नई सरकार को भाषा के नाम पर एक देश में हुए दो देशों को एक करने की सबसे बडी चुनौती है। यह चुनौती कोई साधारण किस्म की नहीं है। यह ऐसी चुनौती है, जिसे हल करने में बहुत सारे बदलाव, प्राथमिकताएँ और अर्हताओं को नये सिरे से संवारना सुधारना पड़ सकता है। अनेक अंग्रेजी दॉ मैकाले के मानस पुत्र विदेशियों के सहारे विरोध के लिए अनेक तरह की समस्याएँ खड़ा कर सकते हैं। देश की कुछ विपक्षी पार्टियां, कुछ दक्षिण की भ्रमित पार्टियां और कुछ वामपंथी कथित इतिहासकार और लेखक हंगामा भी खड़ा कर सकते हैं। इस लिए कुछ ऐसा करना होगा कि कार्य भी हो जाए और भाषा–विरोधी और राष्ट्र–विरोधी शक्तियों को सिर उठाने का मौका ही न मिले।

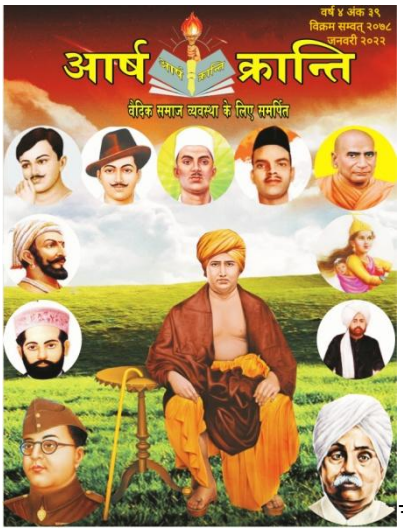
हिंदी या भारतीय भाषाओं में बोलने, लिखने और पढ़ने में जब तक गौरव नहीं महसूस होगा तब तक भारतीय भाषाओं को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। खालिस हिंदीवादी और खालिस भारतीय होने में क्या बुराई है? जब अंग्रेज खालिस अंग्रेजीवादी और खालिस ब्रिटिशवासी हो सकते हैं तो हम खालिस हिंदीवादी क्यों नहीं हो सकते हैं? हमारे पास तो वह सब कुछ है जो एक विकसित संस्कृति वाले, भाषा वाले और कला वाले देश के लिए जरूरी होता है। कमी है तो आत्मबल का। राष्ट्रभाषा के लिए यह आत्मबल सारे देश को पैदा करना होगा। अब वक्त आ गया है कि हम दुनिया को गर्व के साथ दिखा दें कि हमारी महान् संस्कृति का आधार हमारी अपनी राष्ट्रभाषा है। और यह हिंदी के अतिरिक्त भला कौन हो सकती है। (लेखक हिंदी आंदोलनों से जुड़े साहित्यकार व समाजकर्मी हैं) ******

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

गणतंत्र, लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की आजादी

भारत का संविधान जो 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, वह देश के हर नागरिक को समान शिक्षा, समानता और बोलने की आजादी का अधिकार देता है। लेकिन इस सच को हम नकार नहीं सकते कि संविधान लागू होने के 73 वर्षों के बाद भी जातिवाद, व्यक्तिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद और, पार्टीवाद जैसे अलोकतांत्रिक और असामाजिक 'वादों' से ऊपर नहीं उठा जा सका है। यही वजह है कि तमाम तरह की समस्याएं, संकट, बुराइयां, पाखंड, अंधविश्वास, कुरीतियां और भ्रष्टाचार जैसी तमाम कुप्रवृतियां लगातार बढ़ती जा रही हैं। आज हालात यह है कि लोकतंत्र और आजादी के नाम पर देश में ऐसी कवायदें लगातार चलती रहती हैं, जो देश, समाज और विकास में अवरोधक और खतरनाक साबित होती रही हैं। तमाम प्रगतियों के दावों के बावजूद भारत का गण और तंत्र दोनों अभी उन समस्याओं और संकटों से उबर नहीं पाए हैं, जो मूलभूत अधिकारों और जरूरतों को पाने में रूकावट माने जाते रहे हैं। विडम्बना ही कही जाएगी कि लोकतंत्र के नाम पर पिछले 74 वर्षों में 'पाटी–तंत्र' के शक्ल में लोकतांत्रिक अधिकारों, व्यवस्थाओं और कर्तव्यों को कुचलने का कार्य किया जा रहा है। इसलिए लोकतांत्रिक देश होते हुए भी देश का हर नागरिक न तो खुशहाल हो पाया है और न तो अपने अधिकारों को ही हासिल कर पाया है।

आमतौर पर गणतंत्र और लोकतंत्र को सबसे बेहतर राज व्यवस्था के रूप में बताया जाता है। गांधीजी ने इस सम्बंध में संयम और सर्वहित को प्रमुख माना है। यह सवाल उठाया जाना लाज़मी है कि क्या लोकतंत्र और भारतीय गणतंत्र में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर कुछ भी बोलना, फिर उससे मुकर जाना या कुछ भी करना और उसे ज़ायज ठहराना भारतीय लोकतंत्र के लिहाज से ज़ायज कहा जा सकता है? गांधी को गाली देते हुए नाथूराम गोडसे को महिमामंडित करने का मामला हो या जिन्ना को स्वतंत्रता संग्राम सेनानी ठहराने से डठे विवाद हों, इन्हें अभिव्यक्ति की आजादी कहकर दर किनार नहीं किया जा सकता है। इसी तरह की और न जाने कितनी अलोकतांत्रिक कवायदें देश में चलती रहती हैं और हम मूकदर्शक बनें इनकी खिलाफत करने से भी कतराते हैं। गौरतलब है पिछले दो हफ्तों से ऐसे विवादित बयानों से देश में गर्मागरम चर्चा का दौर चल रहा है।



पांच राज्यों के चुनावों ने इस तरह के विवादित बयानों की जैसी बहार आ गई है। इन बयानों की चर्चा सोशल मीडिया से लेकर सारे मीडिया तंत्र में खूब हो रही है। तर्क यह दिया जा रहा है कि लोकतंत्र में यदि देश विरोधी या समाज में हिंसा या नफरत फैलाने वाला वक्तव्य नहीं है, तो उसे अपराध नहीं माना जा सकता है। गौरतलब है आजादी के नाम पर पिछले कुछ दशकों से भारतीय राजनीति में ही नहीं, बल्कि धर्म और जाति के नाम पर राजनीति करने वालों में एक किस्म की विगलित मानसिकता दिखाई दे रही है। वह विगलित मानसिकता है, सुर्खियों में बने रहने के लिए अनाप–सनाप बोलने व कुछ भी करते रहने की। चर्चा में बने रहने के लिए गाली–गलौज करने में भी ऐसे बहुरुपिये किस्म के लोग गुरेज नहीं करते। हालात यह होती जा रही है, समाज में एक 'ट्रेंड' अनाप–सनाप बककर सुर्खियां बटोरने वाले समूह वालों के रूप में खड़ा दिखाई देने लगा है। क्या जिस लोकतांत्रिक और गणतांत्रिक आदर्श व्यवस्था और समाज निर्माण की बात जोर–शोर

से प्रचारित की जाती है, उसका यह 'विलेन' शक्ल नहीं है?

दण्डविधान के साथ ही साथ संविधान में जिस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात आए दिन दुहराई जाती है, उसका आज कितना दुरुपयोग हो रहा है और कितना सदुपयोग, किसी से छिपा नहीं है। क्या अभिव्यक्ति के नाम पर कुछ भी, किसी भी तरह बोलने की छूट मिलनी चाहिए? अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर हिंसा और आक्रामकता से देश, समाज और सांस्कृतिक–मूल्यों का जो नुकसान हो रहा है, उसकी भरपाई किसी तरह से की जा सकती है? यदि इसका जवाब 'नहीं' है तो फिर इस तरफ गम्भीरता से ध्यान देने की जरूरत क्यों महसूस नहीं की जा रही है?

एक समय था विदेशी लोग भारतीय समाज की भाषा–बोली, व्यवहार और अच्छे विचारों के कायल हुआ करते थे। हमने आजादी के बाद विकास किया और आज दुनिया के सबसे तेज रफ्तार से बढ़ने वाली अर्थ–व्यवस्थाओं में भारत का प्रमुख स्थान बताया जाता है। दूसरी तरफ, हम आजादी के बाद अपने जीवन–मूल्यों, पारंपरिक –मूल्यों, सांस्कृतिक और सामाजिक–मूल्यों से इतने कट गए कि हम यह भूल गए कि हम पहले क्या थे और आज क्या हैं।

हमें प्रगति के रास्ते पर किधर जाना चाहिए था और आज किधर जा रहे हैं। हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में जिन संवादों और व्यवहारों के जरिए एक दूसरे से रू–ब–रू होते हैं, उसका स्तर कितना गिर गया है? क्या कभी इस पर गौर करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए? हमारी क्या जरूरतें बस कमाओ, खाओ और उछल–कूद तक ही सीमित हो गई हैं? जिस समाज में हम रहते हैं उसकी बेहतरी के लिए क्या हमारा कोई फर्ज नहीं बनता? आखिर, इन सब बातों पर कौन सोचेगा?।

हम संसद, विधान सभाओं और नगर पालिकाओं में होने वाले शोरगुल और आक्रामकता की चर्चा बहुत ढंग से करते हैं, लेकिन परिवार, मुहल्ले, गलियों, कस्बों और गाँवों में बढ़ती अभिव्यक्ति की आक्रामकता को अनसुनाकर आँखें मूँदे रहते हैं। आज भी जब अशिष्टता और गंवारूपन की बात कहनी होती है तो गांव के अशिक्षित और अनगढ़ लोगों का उदाहरण देते हैं जो न तो सभ्य तरीके से बोलना जानते हैं और न तो भद्र तरीके का व्यवहार करना। लेकिन, अब तो बात उल्टी होती जा रही है। समाज का सबसे शिक्षित तबका हो या अर्द्धशिक्षित तबका। आए दिन, इनमें जिस तरह की भाषाई और व्यवहारगत आक्रामकता दिखाई पड़ती है उसे देखकर तो यही लगता है, इनसे भला तो गाँव का वह तथाकथित 'अनपढ़–गँवार' आदमी ही अच्छा है, जो अपनी हद तो जानता है।

दरअसल, आजादी के इन चौहत्तर सालों में भारत का गणतंत्र गणतांत्रिक व्यवस्थाएं, लोकतंत्र और लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं उस शक्ल में आगे नहीं बढ़ पाई जिससे भारत दुनिया का सबसे बेहतर लोकतंत्र और गणतंत्र के रूप में जाना जाता। गौरतलब है न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और चौथा स्तम्भ कहा जाने वाला मीडिया सभी के ऊपर लगातार सवाल खड़े किए जाते रहे हैं। ऐसे में तमाम विकास, प्रगति और कल्याण वाली योजनाओं का फायदा समाज के सबसे निचले तपके तक पहुंचना एक पहेली के रूप में बताया जाने लगा। हम आज भारत का तिहत्तरवां गणतंत्र मना रहे हैं, लेकिन जब तक संविधान–सम्मत गण और तंत्र दोनों का बराबर हिस्सा बगैर किसी भेदभाव के सबको हासिल नहीं होता और आजादी के नाम पर कुछ भी बोलना व करने पर रोक नहीं लगती, तब तक सही मायने में गणतंत्र और लोकतंत्र सवाल पर उठाए जाते रहेंगे। ******

www.vedyog.net

योगदर्शन के प्रथम पाद – समाधिपाद पर योगसूत्रों और उनके व्यासभाष्य पर आधारित ५० प्रश्नों की प्रश्नमाला हमारी www.vedyog.net website पर online test के रूप में उपलब्ध है। हम हिन्दी एवम अंग्रेजी दोनों माध्यम से परीक्षा दे सकते हैं। इसमें हर प्रश्न के उत्तर हेतु ४ विकल्प दिए

ऐश्वर्य और सद्गुण से जीवन में सफलता का रास्ता खुलता है

ऐश्वर्य दो प्रकार का होता है। पहला धन–धान्य और दूसरा सद्गुण। मानव को सुखी, स्वस्थ, तन्दुरुस्त, प्रज्ञावान, यशस्वी (कीर्तिवान) और परोपकारी होने के लिए दोनों तरह के सद्गुणों की आवश्यकता होती है। वेद में दोनों ऐश्वर्यों से मानव को सम्पंन होने की कामना की गई है। इसलिए जब भी कामना करें, इन्हीं तरह के ऐश्वर्यों की कामना करें। पहला ऐश्वर्य लौकिक जगत् को सुखी और साधन सम्पंन बनाने के लिए आवश्यक है और दूसरा ऐश्वर्य सांसारिक और पारलौकिक दोनों को सुखी और पूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है। इसलिए प्रतिदिन सुबह उठकर परमात्मा से इस तरह के ऐश्वर्य की कामना और प्रार्थना करना चाहिए। इसी में सब कुछ समाहित है यानी यदि ऐश्वर्य के हकदार ईश्वर की नज़र में हो गए तो समझो तुम्हारा सांसारिक जीवन और लौकिक जीवन सफल हो गए। लेकिन ध्यान रखो, उस परमशक्ति से माँगने के पहले खुद को क़ाबिल तो बनाने की कोशिश करनी चाहिए। उस महादानी के दरबार में सब कुछ मौजूद है, इतना कि तुम उसे सँभाल नहीं सकते। इसलिए स्वयं से पूछो– तुम्हें कितना और कब चाहिए। अन्दर से आवाज़ जो आ रही है उसे ध्यान से सुनो। यदि अभी उसकी अनुकम्पा के क़ाबिल नहीं बन पाए हो तो पहले उसकी अनुकम्पा हासिल करने के लिए स्वयं को क़ाबिल बनाओ। फिर देखोगे तुम हर तरह के ऐश्वर्य के अधिकारी बन जाओगे और यह मानव जीवन सार्थक हो जाएगा। सद्गुण रूपी ऐश्वर्य उस परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा से माँगते हो, तो उसे सहज रूप में ग्रहण करने के लिए स्वयं को उसके लिए तैयार भी करना होगा। केवल हमेशा माँगने से कुछ नहीं मिलने वाला। क्योंकि देने वाले ने तो तुम्हें तुम्हारे जन्म से ही ज़रूरत के अनुसार सब कुछ दिया हुआ है, उसे तुमने ठीक तरह उपयोग ही नहीं किया।

ईश्वर की अनुकम्पा से सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त हो उसे धन्यवाद दो, साथ में प्राप्त ऐश्वर्य के सही उपयोग के बारे में सोचो। ध्यान रखो, इस जगत में तो भी किसी के पास जो कुछ भी है, तुम्हारी तरह ही मिला है, तुम्हारा यहाँ कुछ नहीं है। केवल कर्म करने की ही आज़ादी है। हाँ, पूर्वजन्म का जो संचित और इस जन्म में संचित किया हुआ है उसमें से भी कुछ है। पर बाद में जो संचित किया है उसमें भी तुम्हारा अकेले का अपना कुछ नहीं है। इसलिए यह 'अहं' कभी न पालो कि मैंने ही सब कुछ किया। जो मैने इज़ाद किया है उसमें और किसी का योगदान नहीं है। यदि ऐसा है तो तुम्हारे अन्दर दूसरे प्रकार के ऐश्वर्य की बहुत कमी है। बिना सद्गुण रूपी ऐश्वर्य के भौतिक ऐश्वर्य की कीमत तो एक कौड़ी भी नहीं है। यानी सद्गुण यदि तुम्हारे अन्दर नहीं है तो कमाया या विरासत में पाया धन अहंकार, स्वार्थ, व्यसन और विकार उत्पंन करने के अलावा किसी काम का नहीं है। धन का स्वभाव ही ऐसा होता है। इसलिए जीवन में सद्गुण रूपी ऐश्वर्य की सबसे अधिक ज़रूरत है। ध्यान से देखो, यदि धन–दौलत रूपी ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया और सदगुणों को जीवन का अंग नहीं बनाया तो सब व्यर्थ है और यदि सद्गुणों को जीवन का अंग बना लिया तो धन–दौलत की कोई कभी कमी नहीं रहेगी।

महाराज जनक का दरबार लगा हुआ है। मंत्री जी प्रजा का समाचार जनक के सामने बता– सुना रहे हैं। समाचार सुनने के बाद राजा जनक बोले–''यह बताओ, राज्य में किसी को किसी से किसी प्रकार की पीड़ा तो नहीं दी जा रही है?.... यह बताओ, लोग मेरे शासन द्वारा लगाए गए 'कर' से परेशान तो नहीं हैं?.... मेरे शासन के बारे में लोगों की क्या राय है?'' मंत्री ने कहा,–''महाराज, सब कुछ ठीक है। अभी सुनने में ऐसी बातें नहीं आई हैं जो मानव के श्रेष्ठ स्वभाव के विपरीत हो।'' यह सुनकर राजा जनक के हृदय में तोष उत्पंन हुआ। वे अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे। स्वयं दुख सह लेते थे, लेकिन कभी प्रजा को दुखी नहीं देखना चाहते थे। यह है सद्गुण अर्थात्

ऐश्वर्य से भरा हुआ एक ऐसे व्यक्ति का जीवन जो धन–ऐश्वर्य से सम्पंन होते हुए भी उससे कभी लिप्त नहीं हुआ। उपनिषद् में इसी बात की चर्चा करते हुए कहा गया.. हे मानव! कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो, लेकिन उन कर्मों में कभी लिप्त न हो। क्योंकि अशक्ति सभी दुखों का कारण है। हम अपनी गंदी आदतों और गंदे संस्कारों के कारण नसमझ बन जाते हैं और समझ ही नहीं पाते कि जो कर्म कर रहे हैं, वह कितना अच्छा और कितना बुरा है।

धर्मपुर महाराज नरश्रेष्ठ के एक मात्र पुत्र का देहांत हो गया। वे बहुत दुखी रहने लगे। राजकाज में उनका मन एकदम नहीं लगता था। मंत्री इस बात को लेकर बहुत परेशान रहने लगे कि ऐसे में राजकाज के कार्य कौन देखे। रानी की हालत तो और भी खराब थी। ऐसे कब तक चलेगा। राजा के बिना प्रजा अपना दुख–सुख किससे कहने जाए। सारी न्याय–व्यवस्था तो महाराज के हाथों में है। अन्त में निश्चय हुआ कि राज–ऋषि को बुलाया जाए, वे ही महाराज को इस अपार दुख से उबारने के लिए कोई मार्ग बता सकते हैं। राज–ऋषि विष्वंग को बुलाया गया। देखा, महाराज नरश्रेष्ठ व्याकुल बैठे हुए हैं। समझ गये पुत्र शोक के कारण उनकी यह दशा हुई है। ऋषि विष्वंग को देखते ही महाराज नरश्रेष्ठ ने उठकर स्वागत–सत्कार किया। सब क्षेम–कुशल पूछने के उपरांत ऋषि ने राजा से राजकाज के बारे में जानना चाहा। ऋषि से राजा भला क्या कहते।

ऋषि ने कहा, महाराज! आप दुखी इस लिए हैं कि आप के इकलौते पुत्र का प्राणांत हो गया। आप यह बताइए, आपको पुत्र शोक से इतना दुख क्यों हो रहा है कि आप राजकाज की व्यवस्था ही भूल गये हैं?.. आपके राज्य में आप की प्रजा, वह भी तो आपके लिए पुत्रवत् ही तो है। क्या कभी और किसी के देहांत पर आप इतना खिन्न हुए हैं?' राजा ने कहा–''महाराज, इसका जन्मदाता मैं रहा। पालन भी मैंने किया और मेरे आँखों का अकेला ही तारा था। अब किसके सहारे राजकाज को आगे बढ़ाऊँगा?'' ऋषि ने कहा, –''महाराज, प्रजा में प्रतिदिन न जाने कितने बच्चों की मृत्यु होती है। आप के लिए वे भी तो पुत्रवत् ही हैं, उनकी मृत्यु पर आपको शोक क्यों नहीं होता?'' इस लिए न कि उनके प्रति आपका न कोई मोह था, न स्वार्थ था और न किसी प्रकार का आत्मिक या शारीरिक सम्बंध था। महाराज, जब तक जो इस संसार में आया है तभी तक उसके प्रति हमारा सम्बंध क़ायम है। इस संसार से जाने के बाद न हम उसके कोई हैं और न हमारा कोई रह जाता है। संसार में स्वार्थ की वजह से ही मोह, शोक और लोभ पनपता है। अब यह समझिये, यह प्रजा ही आपके पुत्र–पुत्रियाँ हैं। इनका पालन करना आपका धर्म और कर्तव्य है। राजा को ऋषि का उपदेश सुनकर समझ में आ गया कि जब तक संसार में कोई जीवात्मा शरीर रूप में है तभी तक उसका हमारा सम्बंध है। इस संसार से जाने के बाद शोक करना महज स्वार्थ और मोह के कारण होता है। इसलिए मोह रहित जीवन जीना ही सर्वश्रेष्ठ है। इससे ही शोक, दुख, मोह, अशांति और ग्लानि से बचा जा सकता है। ऐश्वर्य रूपी सद्गुण सम्पंन व्यक्ति को न तो शोक होता है, न तो दुख होता है और न तो अशांति से मन की दशा ही डाँवाडोल होती है। कहने का भाव यह है कि मानव जीवन को उस वृक्ष की तरह बनाओ जो समय के साथ अपने अंगों–डालों, पत्तों, फूलों और बीजों को खोकर भी उतना ही खुश रहता है जितना की भरा पूरा रहने पर। जैसे धरती माता वसंत के मौसम में रंग–बिरंगे फूलों, पत्तों और सुगंध से भरपूर होकर इतराती नहीं हैं वैसे ज्येष्ठ यानी जून के महीने में चारों तरफ उचाट होने पर उदास नहीं होती। ऐसे ही सद्गुणी व्यक्ति की पहचान होती है। चतुर व्यक्ति वही होता है जो अपने जीवन को सद्गुणों से भरपूर करके अपना भी कल्याण करता है और परिवार, समाज और विश्व के लिए भी हितसाधक बनता है। जिस तरह से एक–एक बूँद का संग्रह करके समुद्र अपने अन्दर अनंत संभावनाएँ बनाता और हजारों जीव–जन्तुओं को जीवन देता है उसी प्रकार सद्गुण रूपी एक–एक बूँद का संग्रह करके हमें समुद्र बनने का प्रयास करते रहना चाहिए। कहा भी गया है–*कोशिश करने वालों की हार नहीं होती/ जो मन से श्रम करता है उसकी मेहनत बेकार नहीं जाती/* जैसे बादल जलभर कर बिना किसी भेदभाव के हर किसी को प्रसन्न होने का मौका देते हैं उसी तरह से सदगुण रूपी जल को हमें संग्रह करके समाज के कल्याण में बिखेरते रहने की आदत डालनी चाहिए। उस तलैया के पानी का क्या लाभ जो सड़कर बदबू करने लगता है। इसी तरह धन–दौलत को भी समझना चाहिए। उसी का जीवन सफल है जो अपना सुधार करते हुए दूसरों को अपने कार्यों, व्यवहारों और आदतों से मदद करता है और उसके बदले में किसी वस्तु की चाहत नहीं करता है।

महाराजा रणजीत सिंह जा रहे थे। एक पत्थर उनके माथे पर आकर लगा और रक्त बहने लगा। साथ में चल रहे सिपाहियों ने इधर–उधर देखा। वहाँ कोई लड़का दिखाई नहीं दिया। तभी सिपाहियों की नज़र आम के पेड़ के समीप गई। देखा, पास में ही एक बूढ़ी माता भय से काँप रही हैं। सिपाही बुढ़िया के पास गये और उसे पकड़कर महाराजा के पास ले आए। बुढ़िया महाराजा रणजीत सिंह को देखकर काँपने लगी। महाराज, मैंने जानबूझ कर ढेला नहीं मारा है। मैं एक गरीब बुढ़िया हूँ। मेरे

बच्चों को खाने के लिए आज कुछ भी नहीं था, इसलिए आम तोड़ रही थी। क्षमा करें महाराज। वह कहते हुए काँपने और रुआँसी हो गई। महाराजा ने बुढ़िया को क्षमा करते हुए सिपाहियों से कहा, ''इस बूढ़ी माँ को अशर्फियाँ देकर विदा करो।'' सिपाही यह सुनकर चौक गये। वे तो सोचते थे महाराज को बुढ़िया के ढेले से चोट लगी है, उसे दण्ड मिलना चाहिए, लेकिन यह क्या, उसे पुरस्कार दिया जा रहा है! सिपाहियों को पहले तो महाराज से इसका कारण जानने की हिम्मत नहीं हुई, लेकिन एक सिपाही ने हिम्मत करके पूछ ही लिया–''दण्ड के बदले पुरस्कार देने का क्या कारण हो सकता है महाराज?'' महाराज बोले–''चोट खाकर भी यदि आम का वृक्ष आम गिरा देता है तो क्या मैं महाराजा होकर आम के वृक्ष से भी गया बीता हूँ।'' यह है सदगुण से युक्त महान् लोगों का महान् व्यक्तित्त्व। इतिहास ऐसे महान् और परोपकारी लोगों से भरा हुआ है।

सद्गुण श्रेष्ठ संस्कारों से निर्मित होते हैं। बचपन से लेकर जीवन की अंतिम श्वास तक इनके निर्माण का कार्य चलता रहता है। परिवार, विद्यालय, समाज, प्रकृति, देश और स्वाध्याय के द्वारा सद्गुणों का निर्माण होता है। मुंशीराम का जीवन कुसंगति, गंदे विचारों और आहार–विहार के कारण अत्यंत दूषित हो गया था। कोई ऐसा दुराचरण नहीं जिससे मुंशीराम बचे हों। लेकिन कहते हैं, जब जीवन में बदलाव आना होता है, तो जिज्ञासा की प्रवृति का समावेश होने लगता है। यही हुआ, मुंशीराम के साथ भी। पिता के रोकने के बाद भी वह आर्यसमाज के सत्संगों में जाने लगे। सत्यार्थ प्रकाश एक दिन घर ले आए। पिता से छिपाकर पढ़ना शुरू किया। फिर क्या था, गंदा स्वभाव, दुराचरण और पापाचरण की आदत में सुधार होना शुरू हुआ। यहाँ तक कि मांसाहार और शराब भी छोड़ने का निश्चय कर लिया। एक दिन बरेली में महर्षि दयानंद का उपदेश सुना। सुनकर कई प्रश्न महर्षि से पूछे। महर्षि ने उनके सभी प्रश्नों का तर्कसंगत ढंग से समाधान किया। बस, इसी एक साक्षात्कार और जिज्ञासा ने मुंशीराम का जीवन कीचड़ से निकल कर हीरा बन गया। दुर्गुण का स्थान सद्गुणों ने ले लिया। मुंशीराम अब महात्मा मुंशीराम (संन्यास लेने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द) हो गये और जीवन का बाकी समय देश, समाज, वैदिक धर्म, स्वाधीनता और वैदिक शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। ऐसा होता है सद्गुणों के संग्रह का परिणाम और श्रेष्ठ महापुरुषों की संगति का अद्भुत प्रभाव।

सद्गुण रूपी ऐश्वर्य का मालिक बनने पर व्यक्ति प्रथमतः सच्चे मायने में मानव बनता है, फिर देवत्त्व को प्राप्त हो जाता है। भगवान राम, श्री कृष्ण, भगवान बुद्ध, महावीर स्वामी, महर्षि दयानंद, नेता सुभाष, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, महात्मा ज्योतिबा फूले, माता सावित्री फूले, रानी लक्ष्मीबाई, डॉ. अम्बेडकर और महात्मा गाँधी सद्गुणों के कारण ही विश्व में पूज्य बनें। सद्गुण जाति, कुल, परिवार, समाज और धन–दौलत को सुभाषित करते हैं। वहीं पर सद्गुणहीन व्यक्ति अच्छे कुल, परिवार और समाज में पैदा होकर भी पतन को प्राप्त हो जाता है। अनुकरण और अनुशरण से सद्गुण और दुर्गुण दोनों जीवन को क्रमशः उत्तम और गंदे मार्ग पर ले जाते हैं। दुर्गुणी स्वभाव का व्यक्ति पानी के स्वभाव का होता है यानी हमेशा नीचे की ओर ही जाने की प्रवृति उसकी होती है और सद्गुणी व्यक्ति का स्वभाव का व्यक्ति अग्नि की तरह होता है। जैसे अग्नि जहाँ भी जलायी जाए उसकी लौ हमेशा ऊपर की ओर ही होती है। उत्तम जीवन के लिए तो अग्नि का स्वभाव बनाना ही होगा बिना अग्नि का स्वभाव बनाए उन्नति नहीं हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई गुण अवश्य होता है। यहाँ तक की घटिया से घटिया काम करने वालों में भी कोई न कोई विशेषता देखी गई है। इसलिए कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि परमात्मा ने हममें कोई गुण या विशेषता दी ही नहीं है। यह कहें कि सारी की सारी अच्छाइयाँ केवल मुझमें ही हैं यह भी उचित नहीं। केवल समझ का फेर है। बात यह है कि हम अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के बारे में विचार ही नहीं करते हैं। धन कमाने में लगे रहते हैं या खाली समय में दूसरों की प्रशंसा या बुराई करने में। और साथी–संगी मिल गए तो ताश खेलने बैठ गए।

मन की संकीर्णता के कारण हम किसी को बहुत घटिया समझते हैं या बहुत अच्छा। अपने अन्दर झाँकने की कभी कोशिश ही नहीं करते। मानव होने के बावजूद हम अपनी बुद्धि, विवेक, शक्ति और क्षमता के सम्बंध में कभी निष्पक्ष मूल्यांकन नहीं करते। अपने को दीनहीन बताने या अपनी बढ़ाई करने अथवा धन्नासेठ का दिखावा करने में अपने जीवन की सार्थकता समझते रहते हैं। अपने अवचेतन में हम कभी यह नहीं बिठा पाते की हमारा जीवन प्रगतिगामी है, हम एक सत्साहसी, शक्तिशाली, संकल्पवान, निरोगी, तंदुरुस्त, ऐश्वर्यशाली और भाग्यशाली मानव हैं। हम अपने बारे में और दूसरों के बारे में जो सोचते हैं, वह

कल्याणकारी, सर्वहितकारी और बुद्धिसम्मत है–इस पर निष्पक्ष ढंग से विचार ही नहीं करते हैं। हमारे अन्दर सकारात्मकता का समावेश हो जाए तो हमारे विचारों में वैज्ञानिकता, संस्कृति–प्रियता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता और दार्शनिकता का समावेश बढ़ता जाता है और हमारा जीवन मानवीय सद्‌गुणों से भर जाता है। धैर्य, संकल्प, सत्साहस, उमंग, शांति, स्वच्छता, शीलता, सहजता, संवेदना और करुणा जैसे सद्‌गुणों के धनी बनने में ही हमारी और समाज की भलाई है। कल्याणकारी, साहस–भरे, स्वास्थ्यप्रद और सुख देने वाले शब्दों को दिन में कई बार दुहराते रहें, कुछ दिन में ही देखकर आप आश्चर्यचकित हो जाएँगे कि जिन



जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियमपालनयुक्त और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य मलिनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दःखों के